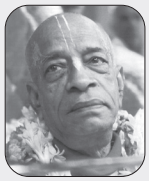

भगवद्दर्शन हरे कृष्ण आन्दोलन की अंग्रेजी पत्रिका **(Back to Godhead)** का अधिकृत हिन्दी संस्करण है, जिसकी शुरुआत श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने सन् १९४४ में अपने गुरु श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वतीमहाराज की आज्ञानुसार की थी।

'भगवद्दर्शन' अखिल मानवता कोआध्यात्मीकृत करने का सांस्कृतिक साधन है। इसके ध्येय इस प्रकार से हैं:

१. सत्य और भ्रम,जड़ और चेतन, नित्य और अनित्य का भेद लोगों को समझाना।

२. भौतिकतावाद के दोष लोगों को बताना।

३. वैदिक संस्कृति के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का प्रशिक्षण देना।

४. वैदिक संस्कृति की रक्षा और प्रचार करना।

५. भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के उपदेश के अनुसार भगवान् के दिव्य नाम का संकीर्तन करना।

६. पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने और उनकी सेवा करने के लिए सारे जीवों की नम्र भाव से मदद करना।

बी.बी.टी. के समन्वयक एवं ट्रस्टी : श्रीमद् गोपालकृष्ण गोस्वामी महाराज, श्रीमद् जयाद्वैत स्वामी महाराज • संपादक : महाप्रभु दास (आर.के. माहेश्वरी) • उपसंपादक : वंशी विहारी दास • सहायक : व्रजवासी दास, भक्त श्रीधर, गौरकीर्तन दास • व्यवस्थापक : सच्चिदानंद दास • कला निर्माता : सुंदररूप दास • वित्तीय प्रबंधन : सहदेव दास (एस.पी.माहेश्वरी), मंजरी देवी दासी • प्रसार व्यवस्थापक : पाण्डुरंग दास

©२०११भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुद्रित एवं प्रकाशितः उज्ज्वल जाजू द्वारा **भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट।** ; प्रकाशन स्थानः **३३, जानकी कुटीर, जुहू, मुम्बई-४९;** मुद्रणः **मैत्रा ग्राफिक्स लि.** १०१ सी ॲन्ड डी, गव्हर्नमेन्ट इन्डस्ट्रीयल इस्टेट, कांदीवली (पश्चिम) मुंबई - ४०००६७. सम्पादकः **आर.के.महेश्वरी, ४, मुरलीमहल, खार (प.), मुम्बई-५२**

विषय-सूची

वर्ष २४ अंक १ जनवरी २०११

२ *श्रील प्रभुपाद प्रवचन*

भगवान् को कैसे देखें और समझें

सभी भगवान् को देखना चाहते हैं किन्तु कोई भी उसका मूल्य चुकाना नहीं चाहता।

५ *तत्त्व-विचार*

आपका धर्म क्या है?

धर्म के गहन अर्थ को समझे बिना भक्ति करने वाले भक्त भी गलती कर सकते हैं कि धर्म क्या और क्या नहीं है।

८ *हरे कृष्ण लोग*

कैंसर से कृष्ण तक

कैंसर का भय पूरे परिवार को कृष्णभक्ति का आश्रय लेने के लिए प्रेरित करता है।

१० *विज्ञान और अध्यात्म*

आध्यात्मिक मिशन के साथ एक वैज्ञानिक

एक जाने-माने वैज्ञानिक के साथ वार्तालाप

१४

शक्ति के लिए संघर्ष

भौतिक शक्ति दूसरों पर निर्भर है, सीमित है, अस्थाई है, और अकसर विनाशकारी

१८ *अनुभूति*

''मैं कभी रोता नहीं''

एक भ्रमणकारी प्रचारक अपने जीवन के प्रत्येक पहलु में अपने गुरु महाराज की कृपा का अनुभव करता है।

२२

समाज की सम्पूर्ण सेवा

सामाजिक समस्याओं के कृष्णभावना द्वारा दिये गये समाधान स्थाई होते हैं।

दिनदर्शिका १२

इस्कॉन जगत् १७

श्रीभगवान् ने कहा २८

सम्पादकीय ३२

कैंसर

'भगवद्दर्शन' पत्रिका साल में बारह बार प्रकाशित की जाती है। सदस्यता शुल्क- वार्षिक : १५० रुपए , द्विवार्षिक :३०० रुपए , पंचवार्षिक : ७०० रुपए। आप किसी भी महीने से सदस्य बन सकते हैं। मनीआर्डर *'भगवद्दर्शन'* के नाम से भेजा जाए। शुरू में भेजते समय या संपादक के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा नाम और पता पिनकोड के साथ साफ अक्षरों में लिखें। अगर पते में परिवर्तन हो तो तुरंत सूचना दें। चेक से रकम भेजनी हो तो मुंबई के बाहर के चेक के लिये १० रु. अधिक भेजें। चेक *'भगवद्दर्शन'* के नाम से भेजें।

संपादकीय कार्यालय :*'भगवद्दर्शन'*, ३०२, अमृत इंडस्ट्रियल एस्टेट, ३री मंजिल, पश्चिम एक्सप्रेस हाइवे मीरा रोड (पूर्व), ४०११०४ दूरभाषः-३२५५६७०१ पत्र व्यवहार के लिए पाठक btghindi@pamho.net पर भी लिख सकते हैं।

हरे कृष्ण संस्था के भक्तों के नाम भगवान् या भगवद्भक्तों के नाम के बाद 'दास'(पुरुषों के लिए) या 'देवी दासी'(स्त्रियों के लिए) जोड़ कर दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए-कृष्णदास, मध्वाचार्य दास या यमुना देवी दासी इत्यादि।

श्रील प्रभुपाद प्रवचन, अक्तूबर १९६८, सियटल

भगवान् को कैसे देखें और समझें

सभी भगवान् को देखना चाहते हैं, किन्तु क्या वे उसका मूल्य चुकाने के लिए तैयार हैं?

हम मूल व्यक्ति परम भगवान् गोविन्द की आराधना कर रहे हैं। और यह भजन जो अभी हम गा रहे थे, *गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि,* उनतक पहुँच रहा है। वे इसे सुन रहे हैं। आप ऐसा नहीं कह सकते कि वे इसे सुन नहीं रहे हैं। विशेष रूप से इस वैज्ञानिक युग में जब रेडियो संदेश हजारों-हजारों मील से प्रसारित किए जाते हैं और उन्हें आप सुन सकते हैं, यह समझना सरल है कि श्रीकृष्ण भी हमारी प्रार्थनाओं को किस प्रकार सुन पाते हैं।

जैसे आप टेलिविजन में हजारों-हजारों मील से प्रसारित चित्रों को देख सकते हैं, उसी प्रकार यदि आप अपने हृदय को सही प्रकार से तैयार करेंगे, आप अपने हृदय में भी सदैव भगवान् गोविन्द का दर्शन कर सकते हैं। यह ब्रह्मसंहिता (५.३८) में बताया गया है – *प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन संतः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।* आपके हृदय में भी एक टेलिविजन है और भगवान् भी वहाँ हैं। यदि आप अपनी मशीन की मरम्मत करें तो आप उन्हें देख सकते हैं, आप उन्हें सुन सकते हैं और उनसे बातें कर सकते हैं। और यह मरम्मत पद्धति कृष्णभावना का विकास है।

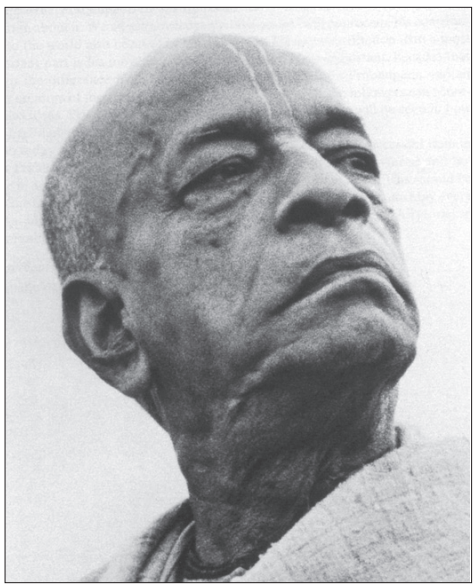

जिस प्रकार टेलिविजन की मरम्मत के लिए एक दक्ष मकैनिक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आपको किसी ऐसे व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता है जो कृष्णभावना के विज्ञान में दक्ष हो। तब आपके हृदय की मशीन कार्य करेगी और आप श्रीकृष्ण को देख सकेंगे। यह योग की पूर्णता है।

तीन मानदण्ड

शास्त्रों से हम सुनते हैं कि कोई इस पूर्णता को कैसे प्राप्त कर सकता है – *साधु शास्त्र गुरु वाक्य चित्तेते करिया एक्य।* आध्यात्मिक साक्षात्कार की पूर्णता गुरु, साधु एवं शास्त्र तीनों का साथ-साथ पालन करके प्राप्त की जा सकती है। रेलवे में हम दो समान्तर पटरियाँ देखते हैं, यदि वे समतल होती हैं तो रेलगाड़ी बहुत तेजी से उन पर चलती है। कृष्णभावना में तीन समान्तर पटरियाँ हैं – साधुओं का संग, शास्त्रों में श्रद्धा और प्रामाणिक गुरु की शरणागति। यदि आप भक्ति के अपने वाहन को इन तीन समान्तर पटरियों पर रखेंगे, बिना किसी अवरोध के यह सीधा आपको श्रीकृष्ण तक ले जायेगा।

यहाँ भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्वयं अपने बारे में बता रहे हैं। किन्तु यदि आप कहते हैं, ''मैं यह कैसे विश्वास करूँ कि ये शब्द श्रीकृष्ण ने ही कहे हैं? किसी और ने इन शब्दों को श्रीकृष्ण के नाम पर लिख दिया होगा।'' नहीं। क्योंकि भगवद्गीता साधुओं द्वारा स्वीकार की गई है, हमें भी इसे स्वीकार करना चाहिए।

यह आम बात है। यदि कोई वकील किसी कानून की पुस्तक को

स्वीकार करता है, तो हमें समझना चाहिए कि वह प्रामाणिक पुस्तक है। आप ऐसा नहीं कह सकते, ''मैं इस पुस्तक को क्यों स्वीकार करूँ?'' प्रमाण यह है कि इसे वकीलों ने स्वीकार किया है। उसी प्रकार क्योंकि साधुओं ने भगवद्गीता को शास्त्रों के रूप में स्वीकार किया है, आप इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रकार साधु और शास्त्र, ये दो पटरियाँ हैं।

और गुरु कौन हैं? जो शास्त्र का पालन एवं प्रचार करते हैं। साधु शास्त्रों की पुष्टि करते हैं और गुरु उसका आचरण एवं प्रचार करते हैं। इस प्रकार साधु, शास्त्र एवं गुरु सदैव एकमत रहते हैं। जो शास्त्रों में कहा गया है उसे साधुओं द्वारा स्वीकार किया गया है और जो शास्त्रों में बताया गया है उसका आचरण एवं प्रचार गुरु द्वारा किया जाता है। जिस प्रकार कानून में कानून की पुस्तकें माध्यम होती हैं उसी प्रकार आध्यात्मिकता में शास्त्र माध्यम हैं। इसलिए जब आप साधु, शास्त्र एवं गुरु इन तीनों का पालन करेंगे तो आपका जीवन सफल हो जाएगा।

योग अर्थात् इन्द्रियनियंत्रण

अब यहाँ भगवद्गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण योग के बारे में बता रहे हैं। पहले छः अध्यायों में उन्होंने जीव की मूलभूत स्थिति की व्याख्या की है। जब तक इसे नहीं समझा जाएगा, योग में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित क्रियाओं का प्रारम्भ भी नहीं होगा। मान लीजिए आप किसी कार्यालय में कार्य कर रहे हैं और आपकी पदवी अभी तक निर्धारित नहीं की गई है। तो उस स्थिति में आप अपने कर्तव्यों को नहीं जानते तथा आप कुछ भी अच्छी प्रकार से नहीं कर पायेंगे। टाइपिस्ट, क्लर्क, संदेशवाहक - वे सभी अपना-अपना कार्य अच्छी प्रकार से कर रहे हैं क्योंकि वे अपने कर्तव्यों को समझते हैं। इसलिए योग का अभ्यास करने से पूर्व जीव को अपनी मूलभूत स्थिति को समझना होगा और इसकी व्याख्या भगवद्गीता के पहले छः अध्यायों में की गई है।

इसलिए योग का अर्थ है अपनी स्थिति को समझकर उसके अनुसार कार्य करना। पहला कदम है - इन्द्रियों का निग्रह (योगं इन्द्रियसंयमः)। आजकल सभी इन्द्रियतृप्ति में अत्यधिक व्यस्त हैं। यह भौतिक जीवन है। और आध्यात्मिक जीवन या योग का अर्थ है इन्द्रियों का निग्रह और आत्मा के रूप में अपनी मूलभूत स्थिति को समझना।

किसी भी व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ तब होता है, जब वह पूछता है कि मैं कौन हूँ? मैं यहाँ क्यों आया हूँ? मुझे इतनी दुःखभरी परिस्थितियों में क्यों रखा गया है? क्या इनका कोई समाधान है? जब ये प्रश्न उठते हैं तब हमारा आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। और मानव जीवन इन प्रश्नों को उत्तर देने के लिए ही है। पशु इन्द्रियतृप्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते। उनके पास यह सब समझने की शक्ति नहीं होती, उनकी चेतना इतनी विकसित नहीं होती। उदाहरणतः, ग्रीन लेक पार्क में अनेक बत्तख हैं। जैसे ही कोई वहाँ थोड़ा-सा भोजन लेकर जाता है, वे एकत्रित हो जाती हैं - ''कॉ, कॉ, कॉ, कॉ।'' और खाने के बाद वे संभोग का आनंद लेती हैं। बस इतना ही। कुत्ते एवं बिल्लियों का जीवन भी इसी प्रकार का है, और मानव जब यह प्रश्न नहीं पूछता कि मैं कौन हूँ तो उसका जीवन भी इसी प्रकार का हो जाता है। यदि किसी का जीवन केवल उसकी इन्द्रियों के वेग द्वारा निर्देशित है तो वह बत्तखों एवं कुत्तों से किसी भी प्रकार श्रेष्ठ नहीं है।

भगवान् और जीव में भेद

इसलिए भगवद्गीता के पहले छः अध्यायों में श्रीकृष्ण बताते हैं कि जीव एक आध्यात्मिक कण है। यह समझना बहुत ही कठिन है कि वह कहाँ है क्योंकि वह बहुत ही छोटा है। कोई भी सूक्ष्मदर्शी इसे खोज नहीं सकता। किन्तु यह आपके शरीर में है। क्योंकि यह आपके शरीर में है, आप चल-फिल रहे हैं, आप बातें कर रहे हैं, आप योजना बना रहे हैं - केवल इस आध्यात्मिक कण के प्रभाव से ही आप अनेक कार्य कर रहे हैं।

सूर्य की किरणों के समान हम परमात्मा के बहुत ही छोटे कण हैं। सूर्य की किरणें चमकते हुए कणों की बनी होती हैं और जब इन चमकते हुए कणों का आपस में मिश्रण होता है तो उससे सूर्यकिरणें बनती हैं। उसी प्रकार हम भगवान् के छोटे अंश हैं और क्योंकि हम भगवान् के अंश हैं, हममें भी भगवान् के समान ही प्रवृत्तियाँ हैं - सोचना, अनुभव करना, इच्छा करना, सृष्टि करना - सबकुछ। आप जो भी अपने अन्दर देखते हैं, वह सब भगवान् में भी है। इसलिए यदि हम सभी व्यक्ति हैं तो भगवान् निराकार नहीं हो सकते। मेरे अन्दर छोटी मात्रा में अनेक प्रवृत्तियाँ हैं और वे सभी भगवान् श्रीकृष्ण में भी हैं किन्तु असीमित मात्रा में हैं। यह कृष्णभावना का विज्ञान है।

हम छोटे हैं, फिर भी हममें अनेक प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ, क्रियाएँ, बुद्धिमत्ता इत्यादि हैं। जरा कल्पना कीजिए भगवान् की इच्छाएँ, क्रियाएँ, बुद्धिमत्ता कितनी अधिक होंगी! इसलिए गुणात्मक दृष्टि से जीव एवं भगवान् समान हैं किन्तु मात्रा की दृष्टि से हम अलग हैं। वे महान् हैं, हम छोटे हैं। वे विभु हैं हम अणु हैं।

जब चिंगारी अग्नि में होती है तो बहुत प्रकाशित होती है किन्तु जब वह अग्नि के बाहर आती हैं तो बुझ जाती है। उसी प्रकार क्योंकि हम श्रीकृष्ण के अंश हैं, जब हम उनके संग में रहते हैं, हमारे विशेष गुण प्रकट होने लगते हैं, अन्यथा हम पूर्णतया बुझ एवं ढक जाते हैं। यदि हम बुझ गए हैं तो जीवन के लक्षण कैसे प्रकट कर रहे हैं? नहीं, हम बुझे नहीं हैं अपितु ढक दिये गये हैं। जब अग्नि ढक दी जाती है, आवरण के ऊपर भी आप ऊष्मा का अनुभव कर सकते हैं किन्तु आप अग्नि को सीधे नहीं देख पाते। उसी प्रकार जब आध्यात्मिक कण भौतिक शरीर द्वारा ढक दिया जाता है, आप अपने जीवन की क्रियाओं के रूप में आध्यात्मिक कण के प्रभाव को तो देख सकते हैं किन्तु आप आध्यात्मिक कण को सीधे नहीं देख सकते। आध्यात्मिक कण को प्रत्यक्ष रूप से देखने के लिए अथवा मूल आध्यात्मिक

स्वभाव को प्राप्त करने के लिए आपको अवश्य ही योग का अभ्यास करना होगा।

प्रथम श्रेणी की योग-पद्धति

भगवद्गीता के छठे अध्याय के पहले श्लोक में श्रीकृष्ण योग पद्धति की व्याख्या करते हैं – *मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।* आपको अपने मन द्वारा सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। यह योग पद्धति हम कृष्णभावनामृत आंदोलन द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं। और यह बहुत कठिन नहीं है। श्रीकृष्ण सुन्दर एवं सर्वाकर्षक हैं और उनके अनेक कार्य हैं। वैदिक साहित्य कृष्णलीलाओं से भरा है। और भगवद्गीता श्रीकृष्ण की शिक्षाओं से पूर्ण है। केवल यह समझना कि भगवान् महान् हैं यह ज्ञान की उदासीन अवस्था है। आपको अपनी समझ को और ऊँचा उठाना होगा और समझना होगा कि वे कितने महान् हैं। यद्यपि यह समझना पूर्णतया सम्भव नहीं है कि वे कितने महान् हैं, क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं किन्तु फिर भी जहाँ तक हो सके हमें प्रयास करना चाहिए। आपको भगवान् की क्रियाओं एवं स्थिति के बारे में श्रवण करना चाहिए और अपने तर्क सामने रखकर, स्वयं निर्णय लेना चाहिए। तब आप बिना किसी संशय के समझ जायेंगे कि भगवान् कौन हैं।

इसलिए वास्तविक योग है *मय्यासक्तमनाः,* सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करना। भगवद्गीता के छठे अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण बताते हैं *योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना,* अर्थात् जो व्यक्ति सदैव उनके चिन्तन में डूबा रहता है वह प्रथम श्रेणी का योगी है। इसलिए आपको उस प्रथम श्रेणी की योग पद्धति का अभ्यास करना होगा, जिसे श्रीकृष्ण *मय्यासक्तमनाः* के रूप में बताते हैं – ''अपने मन को मुझमें आसक्त कीजिए।'' मन आसक्ति का वाहन है और साधारणतया हम किसी व्यक्ति – लड़के या लड़की के प्रति आसक्त हो जाते हैं। निराकार में आसक्ति बकवास है। इसलिए योग का प्रारम्भ मन द्वारा श्रीकृष्ण में आसक्ति द्वारा होता है, श्रीकृष्ण का सदैव चिन्तन करते हुए, उनके प्रति प्रेम का विकास करना। उदाहरणतः (चित्र की ओर इशारा करते हुए) यहाँ श्रीमती राधारानी का चित्र है जिसमें वे श्रीकृष्ण से प्रेम कर रही हैं और उन्हें हार अर्पित कर रही हैं जबकि श्रीकृष्ण अपनी बाँसुरी बजा रहे हैं। आप सदैव इस चित्र का चिन्तन कर सकते हैं, तब आप सदैव समाधि में होंगे। किसी निराकार के चिन्तन का प्रयास क्यों किया जाए? यदि आप किसी निराकार या शून्य का चिन्तन करने का प्रयास करेंगे, आप किसी प्रकाश या रंग का चिन्तन प्रारम्भ कर देंगे – आपके मन में अनेक वस्तुएँ आयेंगी। मन को अवश्य ही किसी रूप का चिन्तन करना चाहिए। हम रूप से कैसे बच सकते हैं? यह सम्भव नहीं है। इसलिए क्यों न अपने मन को परम रूप श्रीकृष्ण पर केन्द्रित किया जाए?

गुणात्मक दृष्टि से जीव एवं भगवान् समान हैं किन्तु मात्रा की दृष्टि से हम अलग हैं। वे महान् हैं, हम छोटे हैं।

योग की पूर्णता

श्रीकृष्ण का शरीर हमारे शरीर जैसा नहीं है। हमारा शरीर पूर्ण रूप से अज्ञानता एवं दुःखों से भरा है और शाश्वत् नहीं है – श्रीकृष्ण के शरीर के बिल्कुल विपरीत। उनका शरीर शाश्वत् है, मेरा शरीर शाश्वत् नहीं है। उनका शरीर आनंद से परिपूर्ण है, मेरा शरीर दुःखों से भरा है। हमें सदैव कुछ न कुछ परेशान करता रहता है – सिरदर्द, दाँतदर्द, यह दर्द, वह दर्द। कोई हमें व्यक्तिगत से परेशान कर रहा है, हम बहुत ही गर्मी या सर्दी का अनुभव करते हैं। किन्तु श्रीकृष्ण का रूप, श्रीकृष्ण का शरीर शाश्वत् है और ज्ञान एवं आनंद से परिपूर्ण है।

इसलिए कृष्णभावना का अर्थ है – श्रीकृष्ण के रूप, नाम, लीला इत्यादि का सदैव चिन्तन करना। हम इस योग पद्धति, कृष्णभावना का अभ्यास कैसे कर सकते हैं? *मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः। मदाश्रयः* का अर्थ है ''उस व्यक्ति की शरण लेना जो हमारे सम्पर्क में है।'' जैसे ही आप श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं आप तुरन्त ही उनके सम्पर्क में आ जाते हैं। किन्तु जबतक आप ऐसे गुरु की शरण नहीं लेते जो उनके विषय में जानते हैं, आप अधिक समय तक ध्यान नहीं कर पायेंगे, आपका ध्यान थोड़े समय के लिए ही रहेगा। इसलिए यदि आप श्रीकृष्ण का सतत चिन्तन करना चाहते हैं, आपको ऐसे व्यक्ति से श्रवण करना होगा जो श्रीकृष्ण के विषय में जानता है और आपको उनके निर्देशों के अनुसार कार्य करना होगा। तब आप योग का अभ्यास पूर्णता के साथ कर पायेंगे। श्रीकृष्ण बताते हैं (भगवद्गीता ७.१)–

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

''मेरे और मेरे प्रतिनिधि के संरक्षण में सदैव मेरा चिन्तन करो। तब तुम मुझे बिना किसी संशय के अच्छी प्रकार से समझ पाओगे और तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा।'' *असंशयं* का अर्थ है ''बिना किसी संदेह के।'' यदि आपको संदेह कि श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं या नहीं, अपने प्रश्न गुरु के समक्ष रखो और समझने का प्रयास करो। बिना किसी संदेह के यह तथ्य है कि वे परम भगवान् हैं किन्तु यदि आपको कोई संदेह है, आप अपने प्रश्नों को गुरु के समक्ष रखकर उसका स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

इसलिए यदि आप सर्वोत्तम योग पद्धति कृष्णभावना का अभ्यास करते हैं, बिना किसी संशय के आप परम भगवान् श्रीकृष्ण को सही प्रकार से समझ जायेंगे। और आपका जीवन सफल हो जाएगा।

बहुत बहुत धन्यवाद।

आपका धर्म क्या है?

धर्म के गहन अर्थ को समझे बिना भक्ति करने वाले भक्त भी गलती कर सकते हैं कि धर्म क्या और क्या नहीं है।

– प.पू. भक्तिराघव स्वामी

अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य श्रील प्रभुपाद धर्म शब्द की गहरी समझ प्रदान करते हुए लिखते हैं – ''धर्म के बिना दर्शन मानसिक कल्पना है, और दर्शन के बिना धर्म भावुकता है, जो कई बार कट्टरवाद को जन्म देता है।'' वैदिक शास्त्रों के अनुसार कोई भी मनुष्य धर्म का निर्माण नहीं कर सकता। श्रील प्रभुपाद (भगवद्गीता ४.१६ तात्पर्य) में लिखते हैं –

वास्तव में धर्म के नियम केवल भगवान् ही बना सकते हैं। धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम् (श्रीमद्भागवत ६.३.१९)। *अपूर्ण मानसिक कल्पना द्वारा कोई भी धर्म-नियमों का निर्माण नहीं कर सकता। हमें ब्रह्मा, शिव, नारद, मनु, कुमारों, कपिल, प्रह्लाद, भीष्म, शुकदेव, यमराज, जनक और बलि महाराज जैसे महान् आचार्यों के चरणचिह्नों का अनुगमन करना चाहिए।''*

पिछली कुछ सदियों में हमने देखा है कि ''धर्म'' शब्द या तो कुछ लोगों के लिए महान् प्रेरणा का स्रोत रहा है और उसने समाज में शान्ति एवं सामंजस्य लाने में सहायता की है, अथवा धर्म अन्यों के लिए महान् चिन्ता का विषय बना है तथा लोगों, समुदायों तथा राष्ट्रों में भेदभाव और कटुता लाया है। इसका प्रमुख कारण है कलियुग में थोक-के-भाव से बढ़ रहे मानव-निर्मित धर्मों की संख्या। अधिकांश लोगों के लिए धर्म एक अस्पष्ट वस्तु है जिसकी परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। किन्तु संस्कृत भाषा में वर्णित धर्म शब्द का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर हम इसे पूरी तरह समझ पायेंगे। यहाँ तककि धर्म के गहन अर्थ को समझे बिना भक्ति करने वाले भक्त भी गलती कर बैठते हैं कि धर्म क्या और धर्म क्या नहीं है।

जब हम आध्यात्मिक जीवन के मूलभूत सूत्रों को समझते हैं तभी धर्म को समझने की शुरुआत हो सकती है। मूलभूत ज्ञान को प्राप्त किये बिना अधिकतर लोगों के लिए धर्म को समझना अत्यन्त कठिन है। इतना ही नहीं धर्म के सच्चे अर्थ का जीवन में पालन करना भी असम्भव हो जायेगा। भगवद्गीता की सनातन शिक्षाओं में धर्म-विषयक पाँच मूलभूत तथ्यों का वर्णन है, १) ईश्वर, २) जीवात्मा, ३) भौतिक प्रकृति, ४) काल और ५) कर्म। इनमें से पहले चार शाश्वत सिद्धान्त हैं और पाँचवा कर्म अशाश्वत है।

धर्म और विश्वास

लोगों की सामान्य धारणा है कि धर्म एक प्रकार का विश्वास है, अथवा किसी विश्वास पर आधारित है। हम देखते हैं कि कई बार लोग अपना विश्वास (धर्म) बदल लेते हैं, ईसाई से मुसलमान बन जाते हैं, या हिन्दु से ईसाई बन जाते हैं, आदि। जबकि वास्तविकता यह है कि धर्म कुछ ऐसी वस्तु है जो कभी बदलती नहीं, क्योंकि यह शास्त्रों एवं सिद्धान्तों पर आधारित एक ठोस सत्य और वास्तविकता है। यह केवल विश्वास नहीं है जिसे बदला जा सके। किसी भी वस्तु या व्यक्ति के सहज स्वभाव अथवा लक्षण को उसका धर्म कहा जाता है। हम सरलता से देख सकते हैं कि सभी वस्तुओं में कुछ ऐसे लक्षण होते हैं जिन्हें बदला नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ, चीनी मीठी होती है। वह उसका धर्म है। यदि चीनी मीठी नहीं है तो उसे कुछ भी कहो किन्तु चीनी नहीं कह सकते। चाहे वह दिखने में चीनी के समान सफेद हो किन्तु यदि उसका स्वाद अलग

है तो वह कुछ और है; शायद नमक। तो हम कोई भी वस्तु लें, उसके कुछ विशेष गुण होते हैं और वे विशेष अपरिवर्तनीय गुण उसका धर्म कहलाते हैं। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सभी मनुष्यों में एक गुण सामान्य है; स्वभाव से सभी किसी से प्रेम करना और किसी की सेवा करना चाहते हैं। इसलिए सेवा करना सभी मनुष्यों का प्रमुख धर्म है; चाहे वह सेवा परिवार की हो, अथवा अपने समुदाय या देश की, या स्वयं अपने-आप की। तो धर्म का अर्थ वह वस्तु है जो सभी प्राणियों में सामान्य हो।

धर्म एक है

चूँकि हमारी पहली पहचान है कि हम आत्मा है, *अहं ब्रह्मास्मि,* और अपने भौतिक अथवा मानसिक शरीर से भिन्न हैं, हमारा मूल स्वभाव आध्यात्मिक है। इसलिए धर्म का सच्चा अर्थ सभी जीवात्माओं की स्वाभाविक पहचान और स्वाभाविक लक्षणों को इंगित करता है। और जब हम यह समझ जाते हैं तो इस सच्चाई को स्वीकार करना सरल हो जाता है कि अपने सर्वोच्च एवं शुद्धतम स्वरूप में धर्म एक है और वैश्विक है। इस समझ के अभाव में हमने विभिन्न विश्वास अथवा मतों वाले समूहों में कृत्रिम भेदभाव उत्पन्न कर लिया है और एक समूह को ईसाई कहते हैं, दूसरे को हिन्दु, तीसरे को बौद्ध, आदि। किन्तु क्योंकि भूत, वर्तमान तथा भविष्य में सभी प्राणियों में आत्मा का स्वभाव कभी बदलता नहीं, तो उनका धर्म भी समान ही रहता है। आत्मा के रूप में अपनी सच्ची पहचान को पहचानना और उसके अनुसार कार्य करना ही सच्चा धर्म है।

धर्म के दो पहलु - आध्यात्मिक और भौतिक

यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अपने शुद्ध एवं सर्वोच्च स्वरूप में धर्म का सामान्य अर्थ ''जीवात्मा के कर्तव्य'' होता है, भौतिक जगत् में भौतिक शरीर में निवास करते हुए आत्मा के साथ एक और आयाम जुड़ जाता है, और वह है बद्धजीव के रूप में उसके स्वाभाविक भौतिक कर्तव्य। ऐसा नहीं है कि केवल अपनी आध्यात्मिक चेतना को जागृत करके हम धर्म के सच्चे अनुयायी बन सकते हैं, अपितु भौतिक धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करके भी ऐसा किया जा सकता है। और इस भौतिक धर्म अथवा कर्तव्यों को दो भागों में विभाजित किया गया है - वर्ण और आश्रम।

श्रीकृष्ण भगवद्गीता (४.१३) में कहते हैं-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्यं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

''प्रकृति के तीनों गुणों और उनसे सम्बद्ध कर्म के अनुसार मेरे द्वारा मानव समाज के चार विभाग रचे गये हैं। यद्यपि मैं इस व्यवस्था का स्रष्टा हूँ, किन्तु तुम यह जान लो कि अपरिवर्तनीय होने के कारण फिर भी मैं अकर्ता हूँ।''

तो वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अपनी स्वाभाविक स्थिति में स्थित होने पर बद्धजीव भौतिक जगत् में भी प्रसन्न रह सकता है।

भागवत धर्म और वर्णाश्रम धर्म

तो धर्म के दो स्तर हैं, १) भागवत धर्म - आत्मा के कार्य, अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की शुद्धभक्ति, और २) वर्णाश्रम धर्म, बद्धजीवात्मा के कार्य, अर्थात् शरीर से सम्बन्धित विशिष्ट और मानक कार्य। और जबतक हम इन दोनों स्तरों को नहीं समझते हम अपने आध्यात्मिक और भौतिक कार्यों को भली-भाँति नहीं कर पायेंगे। धर्म की सम्पूर्ण परिभाषा के अन्तर्गत हमें अपने आध्यात्मिक और भौतिक दोनों स्तरों पर अच्छी तरह कार्य करना होता है।

धर्म के आध्यात्मिक और भौतिक इन दो पहलुओं को समझना इतना सरल नहीं है। चूँकि सामान्यतः धर्म को केवल आध्यात्मिक कार्यों के साथ जोड़ा जाता है, भौतिक कार्यों को धर्म का भाग नहीं माना जाता। यदि कोई व्यक्ति किसी मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर या गुरुद्वारे में जाता है और वहाँ से सम्बन्धित कुछ कार्य करता है तो उसे धार्मिक माना जाता है। अकसर किसी विशेष स्थान पर और किसी विशेष समय पर किये गये अनुष्ठानों, पूजा या प्रार्थनाओं को धर्म मान लिया जाता है। किन्तु वैदिक शास्त्र हमें इससे अधिक कुछ बताते हैं। वर्णाश्रम धर्म के दायरे में ही ऐसे कार्यों का निरुपण किया गया है जो व्यक्ति के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के स्वभाव को सन्तुष्ट करते हैं। हमारे भौतिक कार्यों को वर्णाश्रम धर्म कहा जाता है और आध्यात्मिक कार्यों को भागवत धर्म; इसलिए हमें अपने भौतिक धार्मिक कर्तव्य भी करने हैं और आध्यात्मिक धार्मिक कर्तव्य भी।

आधुनिक समाज में धर्म से पतन

कारखानों, उद्योगों और हाल ही में अविष्कृत जटिल तकनिकों के साथ आधुनिक काम-धंधे मानवता को उसके उन सहज एवं स्वाभाविक कार्यों से दूर ले गये हैं जो धरती, गायों, प्रकृति और भगवान् से सम्बन्धित थे। आधुनिक जीवनशैली ने मानवता के रुख को कृषिप्रधान संस्कृति से हटाकर शहरी जीवन की और मोड़ दिया है। इससे प्रकृति, सामाजिक रीतियों तथा जीवन के मानसिक दृष्टिकोण में अभूतपूर्व असन्तुलन का निर्माण किया है; जिसके परिणामस्वरूप सभी स्तरों पर भेदभाव और अनियमितितायें बढ़ी हैं। धर्म के दोनों पहलुओं को समझने वाले जानते हैं कि वर्तमान आधुनिक जीवन केवल उपभोक्तावाद, भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए स्पर्धा एवं भौतिक रूप से सुखी रहने पर आधारित है, जो

सभी मनुष्यों में एक गुण सामान्य है; स्वभाव से सभी किसी से प्रेम करना और किसी की सेवा करना चाहते हैं।

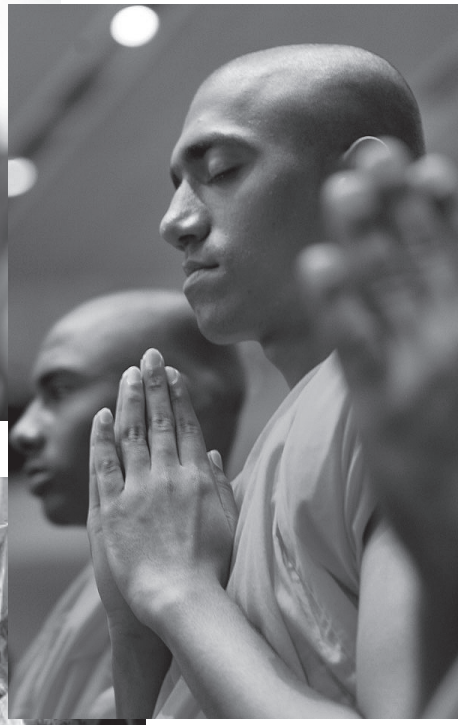

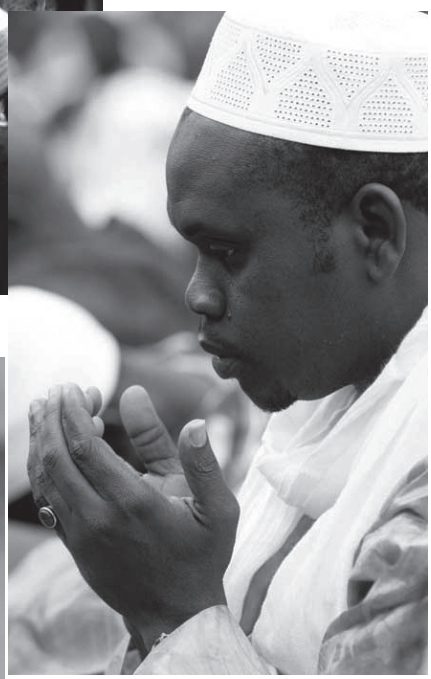

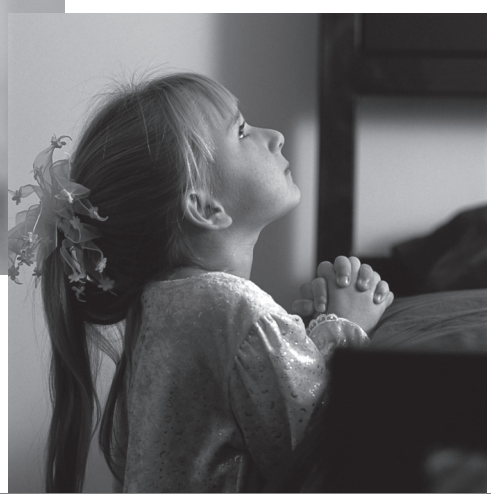

धर्म के मार्ग से भ्रष्ट होना है। हमें इसे स्पष्ट रूप से समझना होगा। समाधान केवल नियम-कानून बनाने में नहीं है, अपितु हमें भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाना होगा, जैसाकि हमारे शास्त्रों और महान् आचार्यों द्वारा सिखाया गया है।

धर्म का मापदण्ड

तो धर्म का उद्देश्य हमारे शरीर और आत्मा दोनों के कर्तव्यों एवं कार्यों का प्रबन्ध करना है। शान्ति और सामंजस्य केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हम धर्म के दोनों पहलुओं में सन्तुलन स्थापित करें। जब हम शास्त्रों में स्थापित मानदण्डों से भ्रष्ट हो जाते हैं, जैसाकि आधुनिक समाज में हो रहा है, 'वर्णसंकर' अर्थात् अवांछित एवं अनियोजित जनसंख्या में वृद्धि होती है। ऐसे वर्णसंकर समाज में उत्पात मचाते हैं और 'उग्रकर्मों' में सलग्न होते हैं। और वर्णसंकर एवं उग्रकर्म से भरे समाज में कोई भी सुखी और सन्तुष्ट नहीं रह सकता, क्योंकि वहाँ लोगों के भौतिक एवं आध्यात्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा की जाती है। स्थिति को सुधारने के लिए हमें उचित ज्ञान प्राप्त करना होगा जिससे हम विवेक बुद्धि द्वारा परिस्थितियों में भेदभाव कर सकें और भावुकता एवं मानसिक कल्पनाओं के स्तर से परे जा सकें। शास्त्रों में दोनों स्तर के कार्यों को स्पष्ट रूप से निरुपित किया गया है – भक्ति द्वारा भगवान् की सेवा (भागवत धर्म) तथा वर्ण एवं आश्रम के आधार पर कार्य। जबतक हम इन्हें भली-भाँति नहीं करेंगे, न तो इस उथले-पुथले संसार में और न ही अगले संसार में सुख एवं शान्ति की कोई सम्भावना हो सकती है।

प.पू. भक्तिराघव स्वामी श्रील प्रभुपाद के शिष्य हैं और भ्रमण करते हुए कृष्णभावना का प्रचार करते हैं।

कैंसर से कृष्ण तक

कैंसर का भय पूरे परिवार को कृष्णभक्ति का आश्रय लेने के लिए प्रेरित करता है।

– युगावतार दास

अपने चचेरे भाई रंजीत के साथ मैं अपने घर में पहले सत्संग कार्यक्रम की तैयारी में जुटा था और मेरी दादी के चेहरे पर अंतोष के स्पष्ट चिह्न उभर रहे थे। प्रतिदिन वे हमें समझाने का प्रयास करतीं कि श्रीकृष्ण की भक्ति तो बुढ़ापे में करने की चीज़ है। किन्तु हम नौजवानों ने उनकी बातों पर अधिक ध्यान नहीं दिया, क्योंकि अभी तक हमनें एक भी ऐसा वृद्ध व्यक्ति नहीं देखा था जो श्रीकृष्ण की भक्ति के विषय में गम्भीर हो। चाहे कोई बूढ़ा हो या जवान, सभी टेलिविजन, खेलकूद, सिनेमा आदि में रमे हुए थे। श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों ने हमें विश्वस्त कर दिया कि भक्ति करने के लिए वृद्धावस्था नहीं, अपितु युवावस्था सर्वाधिक उचित समय है। हमें आज ही भक्ति आरम्भ कर देनी चाहिए क्योंकि शायद कल हम मर सकते हैं। रात को ग्यारह बजे भगवान् की शरण लेने की योजना न बनाओ, क्योंकि हम १०:३० बजे भी मर सकते हैं। श्रील प्रभुपाद पूछा करते थे कि वृद्ध और युवा कि क्या परिभाषा है। कल मरने वाला युवक उस वृद्ध व्यक्ति से कहीं अधिक बूढ़ा है जो अभी १० वर्ष और जीयेगा। इस अनिश्चित संसार में युवक और वृद्ध, ये दो शब्द थोड़े भ्रामक और उलझाने वाले हैं, क्योंकि किसी भी समय कोई भी त्रितापों का शिकार बन सकता है।

युगावतार दास अपनी दादी हंसरूप देवी दासी, दादाजी और छोटी पुत्री के साथ।

कैंसर की शुरुआत

इस संसार की पीड़ा को झेलने वालों की पंक्ति में मेरी दादी का अगला नम्बर था। उनकी गर्दन में थोड़ी सूजन आने लगी और जाँच करने पर मालूम चला कि वह कैंसर है। डॉक्टरों ने उन्हें कैंसर अस्तपाल में जाने के लिए कहा। मेरी बड़ी बहन अपर्णा (अब अनंगगोपी देवी दासी) और मैं, हम दोनों डॉक्टर हैं, इसलिए तुरन्त हम दोनों को बुलवाया गया। हमने सोचा कि डॉक्टर होने

के नाते हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य आत्मा का उपचार करना है। मैंने अपनी प्रिय दादी के हाथों में पवित्र माला देते हुए उन्हें हरे कृष्ण महामंत्र का जप करना सिखाया। हमने उन्हें भगवद्गीता (१८.६६) में वर्णित श्रीकृष्ण की शिक्षा सुनाई कि व्यक्ति को परम भगवान् श्रीकृष्ण की शरण लेनी चाहिए और वे हमें समस्त पापों से मुक्त करेंगे।

कैंसर के विचार मात्र ने मेरी दादी को झकझोर दिया था। उस अवस्था में व्यक्ति को संसारी सुख की व्यर्थता का आभास होता है। फिल्में, मीडिया, टेलिविजन - इनमें से कोई भी भावी मृत्यु के भय से सांत्वना नहीं दे पाता। मेरी दादी ने भक्ति स्वीकारने की आपातकालीन स्थिति का अनुभव किया। न केवल उन्होंने, अपितु मेरे दादाजी, चाचा, बुआ इत्यादि कुल मिलाकर लगभग २० सम्बन्धियों ने जप करना आरम्भ कर दिया। उन सभी को जप करते देख मुझे लगा मानो श्रीकृष्ण कैंसर के रूप लेकर हमारे घर में प्रविष्ट हुए हैं।

अस्पताल का निवास

अस्पताल में भर्ती होने तक मेरी दादी आठ माला जप करने लगी थीं। मेरी बड़ी बहन सदा उनके साथ रहतीं। वे निरन्तर उन्हें कृष्णभक्ति के अद्भुत एवं मधुर ज्ञान का वर्णन करतीं, जो मेरी दादी की वेदना में औषधी का काम करता। अबतक वे अन्तर्मन से श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं की सराहना करने लगी थीं। कई बार वे शोक करतीं कि उन्होंने पहले से ही इसे गम्भीरता से क्यों नहीं लिया। ऑप्रेशन के दिन उन्हें ऑप्रेशन थियेटर में ले जाया गया। मैं बंद दरवाजों की रेखा के बीच से उन्हें प्रतीक्षा करते हुए देख रहा था। स्ट्रैचर पर लेटे-लेटे अचानक उन्होंने द्रौपदी के समान अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और उच्चस्वर में महामंत्र बोलने लगीं। मेरी आँखें भर आईं। मैं सोचने लगा, ''अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में ये भक्तिपथ पर आई हैं। कृष्णभक्ति के अमृत का आस्वादन करवाने के लिए क्या श्रीकृष्ण इन्हें एक अवसर और देंगे?''

कैंसर से मुक्ति

ऑप्रेशन हो गया। गाँठ अहानिकारक निकली और हमें पता चला कि पिछली रिपोर्ट गलत थी। श्रीकृष्ण कितने अद्भुत हैं - वे कैंसर के रूप में आये, पूरे परिवार को अपनी भक्ति का आशीर्वाद दिया और मेरी दादी को एक दूसरा अवसर। हम अस्तपाल से छुट्टी लेकर बाहर निकल ही रहे थे कि कैंसर सर्जन मेरी दादी के पास आये और कहा, ''अम्मा, तुम्हें कैंसर नहीं है। अब बस आराम करो और जीवन के मजे लूटो।'' लेकिन मेरी दादी पहले से ही कृष्णभक्ति के आनन्दभरे जीवन का सुख ले रही थीं। मैंने उन्हें चेतावनी दी और समझाया कि डॉक्टर की सलाह से भ्रमित न हो जायें। हो सकता है कि इस बार वे मृत्यु से बच निकली हों, किन्तु एक-न-एक दिन तो उन्हें फिर से उसका सामना करना ही पड़ेगा; और हम सभी को भी। मुर्गे की दुकान में कई बार मुर्गा कटने से बच जाता है, क्योंकि उसका वजन ग्राहक की आवश्यकता से कम होता है। लेकिन जैसे की कहावत है - बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी? कुछ घण्टों बाद दूसरा ग्राहक आता है और उसे कम वजन वाले मुर्गे की आवश्यकता होती और इस बार उस पतले मुर्गे का अन्त हो जाता है। कुछ समय के लिए मृत्यु से बच पाना उस मुर्गे द्वारा मृत्यु से बचने के समान होता है - क्षणभंगुर और अस्थाई।

स्ट्रैचर पर लेटे-लेटे अचानक उन्होंने द्रौपदी के समान अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और उच्चस्वर में महामंत्र बोलने लगीं।

इस्कॉन के अस्पताल में

मेरी दादी और चाचा पूना लौट आये। उन सभी को श्रीकृष्ण की कृपा का स्मरण रहा और वे नियमित रूप से पूना स्थित इस्कॉन मंदिर जाने लगे। अस्पताल से छुट्टी मिलने तक मेरी दादी ने १६ माला जप करना आरम्भ कर दिया था। मंदिर में जयदेव दास और सत्यवती देवी दासी जैसे वरिष्ठ भक्तों ने उनका आगे मार्गदर्शन किया। अब उन्होंने भौतिक रोग से मुक्त होने के लिए इस्कॉन मंदिर में उपचार आरम्भ कर दिया था, जो एक अस्पताल के समान था। मंदिर के भक्त दक्ष डॉक्टर के समान होते हैं जो मोह-माया का मोतियाबिन्द निकालकर हमें आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करते हैं। मेरी दादी ने प्रसाद के रूप में आध्यात्मिक ''डाइट'' लेनी आरम्भ कर दी और नियमित रूप से हरिनाम रूपी औषधी भी।

एक वर्ष उपरान्त दीक्षा के लिए उनका चुनाव किया गया, जिसके लिए वे मुम्बई आईं। यहाँ आने पर उन्हें पता चला कि उनके कैंसर सर्जन, जिसने उन्हें मजे लूटने के लिए कहा था, ४५ वर्ष की आयु में हार्टअटैक से मर गये। किन्तु इस समाचार से उन्हें असुरक्षा की अनुभूति नहीं हुई क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण का आश्रय लिया हुआ था। दीक्षा कार्यक्रम में उनका नाम हीराबाई भोसले पुकारा गया। हमने उन्हें फुर्ती से उठते और अपने गुरु के समक्ष प्रणाम करते हुए देखा। किन्तु उसके बाद क्या हुआ हम देख नहीं पाये, हमारी आँखें आँसुओं से जो भर चुकी थीं। तब उनके गुरु महाराज ने कहा, ''हीराबाई, आज से तुम्हारा आध्यात्मिक नाम होगा हंसरूप देवी दासी।''

(हंसरूप देवी दासी की उम्र अस्सी से अधिक है। वे प्रतिदिन ४:३० बजे उठती हैं और सुबह-सुबह ही अपनी १६ माला का जप कर लेती हैं।)

युगावतार दास मुम्बई स्थित के.ई.एम मैडिकल कॉलेज में एनाटॉमी के एसोसिएट प्रोफेसर हैं।

आध्यात्मिक मिशन के साथ एक वैज्ञानिक

डॉ. माइकल क्रीमो अथवा द्रुतकर्मा दास इस्कॉन के जाने-माने वैज्ञानिक हैं, जिनकी २६ भाषओं में ३,००,००० पुस्तकें बिक चुकी हैं। अपनी पुस्तक Forbidden Archeology से उन्हें विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त हुई, जिसे ''बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में बौद्धिक उपलब्धि के सीमाचिह्नों में से एक'' माना जाता है।

१५ जुलाई १९४८ को न्यूयॉर्क, अमरीका में जन्मे द्रुतकर्मा दास में सहज ही साहित्यक रुझान था। और बचपन में वे बैठे-बैठे नूडलों से अक्षर बनाया करते थे। उनके भीतर सत्य के प्रति सहज आवेश ने उन्हें सत्य की खोज के लिए भारत जाने की प्रेरणा दी। हालाँकि वे कभी भारत तक नहीं पहुँच पाये, भारत का सत्य इस्कॉन के रूप में १९७३ में स्वयं उनके पास पहुँच गया। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी साहित्यकी एवं आध्यात्मिक रुचियों को जोड़कर अपने लेखन एवं सम्पादन से कृष्णभक्ति का प्रसार आरम्भ कर दिया। पिछले तीन दशकों से बैक टू गॉडहैड (भगद्दर्शन का अंग्रेजी संस्करण) के सह-सम्पादक होने का साथ-साथ वे 'भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट' की अनेक पुस्तकों में सह-लेखक भी रहे हैं - जैसे द हाइयर टेस्ट, चैंट एण्ड बी हैप्पी, डिवाइन नेचर और कमिंग बैक। १९८० में श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों के बारम्बार अध्ययन करने पर उन्होंने अपने अंतर्मन में अपने गुरु महाराज की इच्छा को पूरा करने की प्रेरणा प्राप्त की। वह इच्छा थी - प्राचीन भारत के वैदिक साहित्य में वर्णित वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सहायता से आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रचार किये जा रहे नास्तिकवाद का खण्डन करना।

१९८४ में डॉ. रिचर्ड एल. थॉम्पसन के साथ 'ओरिजन' पत्रिका का लेखन करने के पश्चात् उन दोनों ने लगभग एक दशक तक गहन शोध करके १९९३ में Forbidden Archeology नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें डार्विन की नास्तिकवादी इवोल्यूशन थियोरी के खण्डन में ढेर सारे प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। यह पुस्तक एक विवादास्पद परन्तु सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक रही और लेखक की प्रशंसा एक ऐसे पुरातत्त्व खोजी के रूप में हुई जिसने ''मानवता के इतिहास के बंद दरवाजों को खोल दिया,'' और साथ ही एक ढोंगी वैज्ञानिक रूप में उनके तिरस्कार भी हुआ कि इनकी पुस्तकों को ''केवल एक मूर्ख ही गम्भीरता से लेगा।''

किसी भी अवसर से न चूकने वाले डॉ. क्रिमों ने अपनी पहली पुस्तक पर उठे इन सभी विवादों को लिया और बुद्धिमत्ता के साथ १९९८ में अपनी दूसरी पुस्तक Forbidden Archeology's Impact लिख डाली। १९९९ में Forbidden Archeology का संक्षिप्त संस्करण The Hidden History of the Human Race प्रकाशित

किया गया, जिसका अनुवाद बाद में बीस अन्य भाषाओं में हुआ। २००३ में उन्होंने Human Devolution प्रकाशित की और वैज्ञानिक दृष्टि से इस वैदिक सिद्धान्त को प्रस्तुत किया कि मनुष्य केवल जड़पदार्थ अथवा रसायनों का मिश्रण नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि बन्दर जाति में सुधार होते-होते हम मनुष्य बन गये हैं, अपितु हम सभी का पतन आध्यात्मिक जगत् से हुआ है। डॉ. क्रीमो ने वैष्णव धर्म और विज्ञान में पी.एच.डी. प्राप्त की है और वे विश्वभर की अनेक विख्यात् वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य हैं। विख्यात् अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में उन्होंने दर्जनों लेख प्रस्तुत किये हैं और विश्वभर के अनेक विश्वविद्यायों में सैकड़ों सम्भाषण दिये हैं। आगामी फरवरी में अपने भारत दौरे के दौरान वे अपनी नई पुस्तक The Forbidden Archeologist का विमोचन कर रहे हैं और इस अवसर पर प्रस्तुत है डॉ. क्रिमो के साथ एक वार्तालाप।

१. एक ओर जहाँ आधुनिक विज्ञान और तकनीक ने सफलता की अकल्पनीय छलांग लगाई है, भारत के वैदिक ग्रंथ किस प्रकार विज्ञान तथा पूरे समाज में अपना योगदान दे सकते हैं?

कुछ सदियों पूर्व जब यूरोप में आधुनिक विज्ञान का विकास आरम्भ हुआ तो कुछ प्रभावशाली वैज्ञानिकों ने अपने कार्यों में से सत्य (आत्मा और भगवान्) के सूक्ष्म भौतिक (मानसिक, रहस्यमय) तथा आध्यात्मिक पहलुओं को नजरअंदाज करने का निर्णय लिया। यह उनके विज्ञान के लिए लाभदायक था। केवल सामान्य जड़वस्तुओं पर ध्यान देने से और गणित के नियमों द्वारा सूक्ष्मता से उसका विश्लेषण करने से विज्ञान ने जड़जगत् पर नियंत्रण करने की क्षमता में अत्यन्त प्रगति की है। इसके परिणामस्वरूप अनेक उपयोगी तकनीकों का विकास हुआ। धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने जड़पदार्थ को समझने और नियंत्रण करने के अपने प्रयासों को भौतिकी के क्षेत्र से जैवविज्ञान के क्षेत्र तक विस्तारित कर दिया। इससे वे इस निष्कर्ष तक पहुँचे कि मनुष्य जड़पदार्थ से बनी मात्र एक जटिल मशीन है। इन सिद्धान्तों ने न केवल यह दावा किया कि हम मशीन हैं, अपितु हम ऐसी मशीनें हैं जो अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए एक-दूसरे के साथ स्पर्धा में हैं। तो हमने भौतिक दृष्टि से बहुत प्रगति तो की है, परन्तु इसके बदले में कितने मानवीय मूल्यों की क्षति हुई है उसपर हमने ध्यान नहीं दिया। अब हमारी विचारधारा ऐसी बन चुकी है कि मनुष्य जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य अधिकाधिक वस्तुओं का उत्पादन एवं उपभोग करना है। और ऐसा करने में हम पर्यावरण को नष्ट कर रहे हैं। हम वायु, भूमि और पानी तीनों को विषैला बना रहे हैं। साथ ही मानव समाज भौतिक संसाधनों एवं सम्पत्ति पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए एक तीव्र स्पर्धा में लगा हुआ है। व्यक्तिगत, जातिय, राष्ट्रीय और यहाँ तककि धार्मिक स्तर पर विवाद

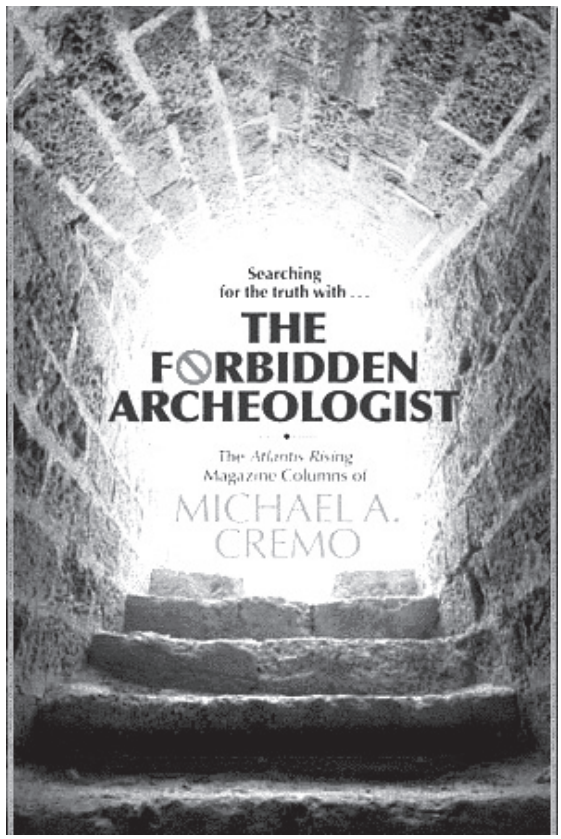

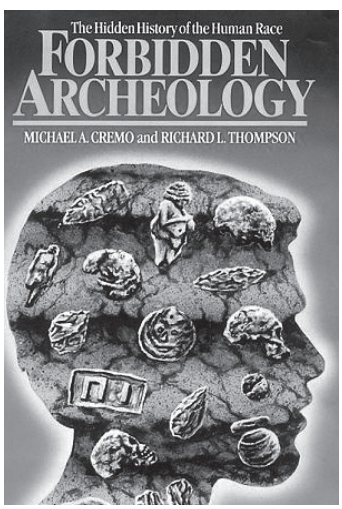

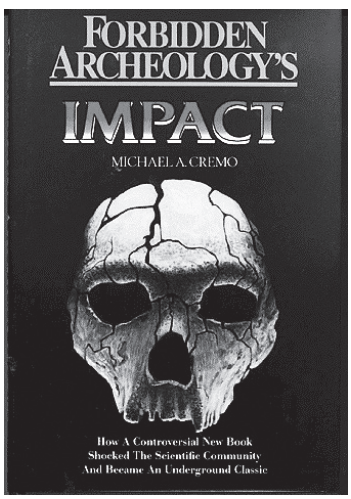

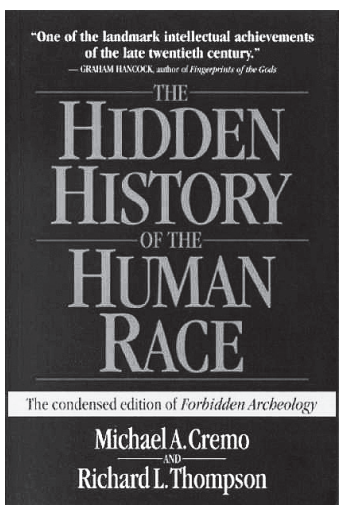

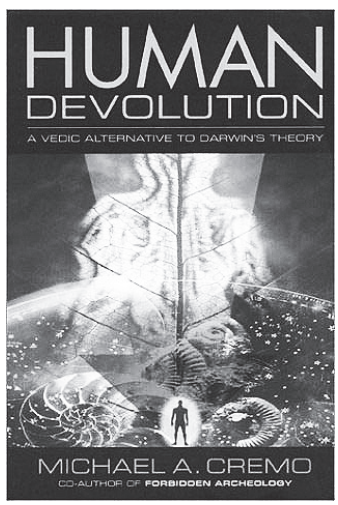

उठ रहे हैं। भौतिक सम्पत्ति और संसाधनों की इस विवाद और स्पर्धा में कुछ लोग अपने उचित हिस्से से अधिक प्राप्त करने के लिए अनुचित कार्य करते हैं। विश्व में उभरे वर्तमान आर्थिक संकट की यही जड़ है। मेरे अनुसार इसका मूल कारण यह है कि हमने जड़पदार्थ से उसके आध्यात्मिक पहलु को अलग कर दिया है। वैदिक ग्रंथ वास्तविकता का एक अधिक संतुलित और पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं, जिसमें जड़पदार्थ और चेतनपदार्थ के बीच सामंजस्य दर्शाया गया है। वेदान्त-सूत्र में कहा गया है *अहं ब्रह्मास्मि,* अर्थात् ''मैं ब्रह्म अथवा आत्मा हूँ।'' तो अंततः हम सभी शुद्ध चेतना वाले जीव हैं, जिनका स्रोत भी एक है और जो एक-दूसरे से सम्बन्धित भी हैं। वेदान्त-सूत्र में आगे कहा गया है, *जन्मादस्य यतः,* अर्थात् प्रत्येक वस्तु एक आध्यात्मिक स्रोत से उत्पन्न हो रही है। यदि इन बातों को समझ लिया जाये तो हम धरती द्वारा दिये जा रहे संसाधनों का उपयोग आवश्यकतानुसार अपनी सीमाओं में इस प्रकार करेंगे कि वह पर्यावरण के लिए हानिकारक न हो। यदि हम समझ जायें कि हम सभी एक ही स्रोत से आ रहे हैं, हम सभी एक ही आध्यात्मिक परिवार के सदस्य हैं तो संसार में विवाद और हिंसा बहुत कम हो जायेगी और धरती के उपहारों का उचित बँटवारा हो सकेगा।

२. क्या वैज्ञानिक और अध्यात्मवादी होना आपस में विरोधाभासी नहीं हैं? आप इन दोनों भूमिकाओं को एक-साथ कैसे निभाते हैं?

मैं स्वयं को सत्य की खोज में निकला एक मनुष्य देखता हूँ। और जहाँ भी सत्य मिलता है मैं उसे स्वीकार करता हूँ, चाहे वह विज्ञान हो या आध्यात्मिकता। मैं सच्चे विज्ञान में आध्यात्मिकता का समावेश देखता हूँ और सच्ची आध्यात्मिकता एक विज्ञान है। जैसाकि आइंस्टाइन ने कहा था, ''बिना धर्म के विज्ञान लंगड़ा है और बिना विज्ञान के धर्म अंधा।'' सच्चे विज्ञान को ऐसे किसी भी तथ्य को स्वीकारने के लिए तैयार रहना चाहिए जिसमें सत्य होने सम्भावनायें हों। ऐसे कोई मनमाने नियम नहीं होने चाहिए कि वैज्ञानि अपने शोधकार्यों में आत्मा और भगवान् का समावेश नहीं कर सकते। यह निर्णय हमें व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक वैज्ञानिक पर छोड़ देना चाहिए। और यदि हम विज्ञान का इतिहास देखें, हम पायेंगे कि अनेक वैज्ञानिकों ने ऐसा किया था। और जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है वह अंधविश्वासों पर आधारित नहीं होना चाहिए। उसे इस दृष्टि से आध्यात्मिक होना चाहिए कि यदि आप कोई विशेष कार्य करते हैं तो आपको उसका अपेक्षित परिणाम मिलना ही चाहिए। योग के विषय में यही बात मुझे सर्वाधिक आकर्षित करती है। अपने शुद्ध रूप में आध्यात्मिकता चेतना को परिवर्तित करने वाला विज्ञान है। और यदि आप प्रयोग करें तो आपको निश्चय ही अपेक्षित फल प्राप्त होगा।

३. इस्कॉन एक आध्यात्मिक संस्था है, उसमें विज्ञान का क्या स्थान है और आप जैसा वैज्ञानिक किस प्रकार उसमें अपना स्थान प्राप्त कर सकता है?

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य और मेरे गुरु श्रीकृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद श्रीमद्भागवत (१.५.२२, तात्पर्य) में लिखते हैं - ''बुद्धिमान लोग परमसत्य को विज्ञान के माध्यम से समझने के लिए उत्सुक हैं और इसलिए किसी महान् वैज्ञानिक को वैज्ञानिकता के आधार पर भगवान् के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए।'' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने १९७४ में भक्तिवेदान्त इंस्टीट्यूट की स्थापना की। मैं १९८४ में इससे जुड़ा और उस समय से मैं Forbidden Archeology और Human Devolution: A Vedic Alternative to Darwin's Theory जैसी पुस्तकें लिखते हुए कार्य कर रहा हूँ। ये पुस्तकें मानवीय उत्पत्ति के ज्ञान को वैदिक शास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों के अनुसार प्रस्तुत करती हैं। इस्कॉन में भक्तियोग का पालन किया जाता है। और भक्तियोग का एक अंग यह है कि हम अपनी दक्षताओं और क्षमताओं को भगवान् की सेवा में लगायें। उदाहरणार्थ, अर्जुन एक

वैष्णव दिनदर्शिका

१ जनवरी २०११ से १० फरवरी २०११ तक

जनवरी २०११

शनिवार १, पारण काल ७:१३-१०:४०
रविवार २, श्रील महेश पण्डित तिरोभाव, श्रील उद्धरण दत्त तिरोभाव।
बुधवार ५, श्रील लोचनदास ठाकुर आविर्भाव।
शुक्रवार ७, श्रील जीव गोस्वामी तिरोभाव, श्रील जगदीश पण्डित तिरोभाव।
शनिवार १५, मकर संक्रान्ति, गंगा सागर मेला।
रविवार १६, पुत्रदा एकादशी।
सोमवार १७, पारण काल ७:१४-८:३०, श्रील जगदीश पण्डित आविर्भाव।
बुधवार १९, श्रीकृष्ण पुष्य अभिषेक।
सोमवार २४, श्रील रामचंद्र कविराज तिरोभाव, श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी आविर्भाव।
मङ्गलवार २५, श्रील जयदेव गोस्वामी तिरोभाव।
बुधवार २६, श्रील लोचनदास ठाकुर तिरोभाव।
रविवार ३०, सत्-तिल एकादशी।
सोमवार ३१, पारण काल ७:१० - १०:४६

फरवरी २०११

मंगलवार ८, वसंत पंचमी, श्रीमती विष्णुप्रिया आविर्भाव, श्रीसरस्वती पूजा, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर तिरोभाव, श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि आविर्भाव, श्रील रघुनन्दन ठाकुर आविर्भाव, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी आविर्भाव।
गुरुवार १०, श्रील अद्वैताचार्य आविर्भाव (दोपहर तक उपवास)।

योद्धा थे और उन्होंने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अपनी क्षमताओं को भगवान् की सेवा में नियोजित किया। उसी प्रकार मैं अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग भगवान् की सेवा में कर रहा हूँ। तो मेरा यह कार्य मेरे भक्तियोग का अंग है।

४. ऐसे अमरीकी वैज्ञानिक के रूप में, जो भारतीय प्राचीन ग्रंथों का एक विद्वान् भी है, आप भारतीयों के लिए क्या संदेश देना चाहेंगे?

भारत के प्राचीन ग्रंथ जैसे वेद, उपनिषद् और पुराणों में वह ज्ञान दिया गया है जो वास्तविकता का सम्पूर्ण चित्र प्रदान करने में विज्ञान की सहायता कर सकता है; ऐसा चित्र जो भौतिकता और आध्यात्मिकता में उचित संतुलन रखता है। निःसंदेह, आज के वैज्ञानिक जगत् में शास्त्रों से केवल कुछ उदाहरण देना पर्याप्त नहीं है। हमें ऐसे प्रमाण देने होंगे जो वैदिक ज्ञान के सिद्धान्तों के साथ तर्कसंगत हों। वैदिक साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान यह है कि जीवन जड़पदार्थ से उत्पन्न नहीं होता। जीवन का स्रोत जीवन ही है। हम केवल भौतिक आवश्यकताओं वाले भौतिक जीव अथवा मशीन नहीं हैं, अपितु हम आध्यात्मिक जीव हैं और हमारी आवश्यकतायें भी आध्यात्मिक हैं। मैं यह नहीं कहूँगा कि हमें जीवन के भौतिक पहलु की उपेक्षा कर देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि कोई गलत प्रकार का भोजन अधिक मात्रा में कर लेता है तो उसका वजन बढ़ जायेगा और वह रोगी बन जायेगा। इसका समाधान खाना बंद करना नहीं है। समाधान है कि उचित आहार उचित मात्रा में खाया जाये। तो आज मानव समाज अत्यधिक भौतिकवादी बन चुका है और वह उसके परिणाम भी भोग रहा है। भारतीय ग्रंथों के ज्ञान से हम इस पृथ्वी पर मानवजीवन को संतुलित करने में सहायता प्राप्त कर सकते हैं। उनसे हम सीखते हैं कि कैसे सरल, सहज और प्राकृतिक रूप से हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, और साथ ही अपनी अधिकांश शक्ति का प्रयोग आध्यात्मिक चेतना को विकसित करने में लगा सकते हैं। वेदान्त-सूत्र कहते हैं अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। हमें अपने आध्यात्मिक स्वभाव के विषय में जिज्ञासा करके उसका विकास करना चाहिए। निःसंदेह इसे अकेले रहकर भी किया जा सकता है, किन्तु अच्छा होगा समाज की व्यवस्था इस प्रकार से की जाये कि सभी इसे आसानी से कर पायें। प्राचीन भारत के समाज इस प्रकार व्यवस्थित थे कि लोगों को अपना आध्यात्मिक स्वभाव विकसित करने में सहायता मिलती थी, और आज भी कुछ सीमा तक समाज की वही व्यवस्था चली आ रही है। आजकल पश्चिम से आकर्षित होकर अनेक भारतीय अपनी संस्कृति और परम्परा को त्याग रहे हैं अथवा उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार वे उस आध्यात्मिक विरासत को खो रहे हैं जिसका उपहार वे सम्पूर्ण विश्व को दे सकते हैं। यदि भारतवासी खुले मन से अपने आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन करें और उनसे शक्ति प्राप्त करें तो वे न केवल अपने देश के खोये हुए यश को पुनः स्थापित कर सकते हैं, अपितु भारत को एक विश्वस्तरीय आध्यात्मिक शक्ति भी बना सकते हैं। सिद्धान्त और संस्कृति की योजनाबद्ध प्रस्तुतियों द्वारा इस्कॉन भारतवासियों को उनका खोया हुआ यश पुनः प्राप्त करने का अवसर प्रदान कर रहा है।

(The Forbidden Archeologist पुस्तक ९ नवम्बर से Amazon.com एवं अन्य पुस्तक केन्द्रों पर उपलब्ध है। डॉ. क्रीमो के भारत में होने वाले कार्यक्रमों के लिए www.mcremo.com पर जायें।)

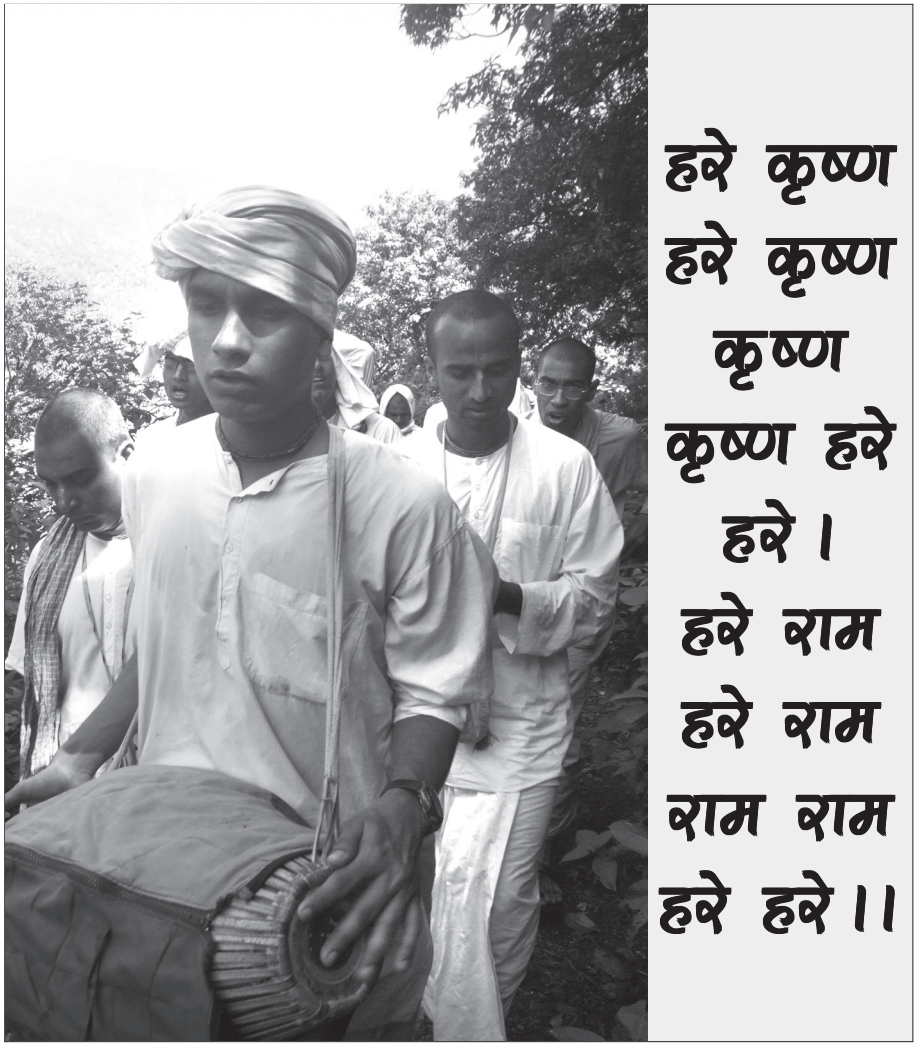

शक्ति के लिए संघर्ष

अनादि काल से मनुष्य में शक्ति प्राप्त करने की भूख रही है, किन्तु उसे कितनी भी शक्ति क्यों न प्राप्त हो जाये वह कभी भी पर्याप्त नहीं हो पाई।

– कपिल मोनेट

मानवता के पास कभी भी इतनी शक्ति नहीं थी जितनी आज के कलियुग में हमारे पास है। हमारी शक्तियों में से कुछ इस प्रकार हैं – आण्विक अस्त्र, विश्वव्यापी व्यापार, विस्तृत कम्प्यूटर, चिकित्सा के क्षेत्र में चमत्कार, झटपट संचार–व्यवस्था, सेटेलाइट द्वारा संसारभर की जानकारी और इंटरनेट पर अंगुलियों को घुमाने से किसी भी प्रकार के ज्ञान की किसी भी समय प्राप्ति। वास्तव में इनमें से अनेक शक्तियाँ मानव द्वारा कल्पित चमत्कारों से भी परे हैं।

शक्ति में क्षमता और अधिकार दोनों ही आते हैं। शब्दकोश के अनुसार शक्ति का अर्थ है, 'सामर्थ्य,' 'नियन्त्रण,' 'बल,' और 'प्रभाव।' इतिहास में मनुष्य शक्तिशाली लोगों की प्रशंसा की है अथवा उनसे भयभीत रहे हैं। सिकंदर, सीजर, नेरो, चंगेज खान, नैपोलियन, हिटलर–सूची उतनी ही अन्तहीन है जितना कि इतिहास।

आधुनिक समय में रूस, चीन और अमरीका के राष्ट्रपतियों के पास विश्व के अरबपतियों के साथ मिलकर संसार में युद्ध छेड़ने, प्रभुत्त्व स्थापित करने, इतिहास को बदलने और विश्व के सुखों का भोग करने के लिए अविश्वसनीय शक्तियाँ हैं। साथ–साथ प्रमुख व्यापारी एवं राजनेता नियन्त्रण एवं क्षमता के निरन्तर उतार–चढ़ाव के बीच में अपने व्यक्तिगत लाभ हेतु शक्ति को केन्द्रित करते रहते हैं।

किन्तु भौतिक जगत् में शक्ति का अनुभव कुछ वास्तविकताओं को भी उजागर करता है।

शक्ति अस्थायी है – बड़े–बड़े सम्राट भी मरते हैं और बड़ी–बड़ी सभ्यताएँ भी इतिहास में लुप्त हो जाती हैं।

शक्ति निर्भर करती है – किसी के पास भी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि जितनी अधिक शक्ति संचित की जाती है उतनी अधिक निर्भरता भी आ जाती है। अमरीका के राष्ट्रपति अपने व्यापारी दानदाताओं, राजनैतिक सम्बन्धों, विदेशी मित्रराष्ट्रों और विशेष रूप से अपने देश के मतदाताओं पर निर्भर हैं।

शक्ति सीमित है – हमारी शक्ति कितनी भी क्यों न हो, कोई न कोई तो हमसे बड़ा हमेशा होता ही है। लोग इसे जानते हैं, इसलिए उन्हें वास्तव में कभी पता नहीं चल पाता कि अभी किसका नियन्त्रण है और वे बड़ी से बड़ी साजिशों की खोज में लगे रहते हैं।

बहुधा शक्ति विनाशकारी होती है – उचित प्रयोग किये जाने पर शक्ति सजृनात्मक होती है। किन्तु शक्ति का प्रदर्शन अनेक बार विनाश और हिंसा का रूप ले लेता है। उदाहरणतः मानव के रूप में हम अपनी शक्ति को जैसे–जैसे विस्तारित कर रहे हैं, हम पृथ्वी का विदोहन एवं विनाश कर रहे हैं।

शक्ति का स्वभाव

शक्ति की इच्छा, उसकी खोज और दुरुपयोग कोई नई बात नहीं है। वैदिक साहित्य शक्ति के स्वभाव के उदाहरण दिखाते हैं, जैसे महान् असुर हिरण्यकशिपु की कहानी है।

दस हजार वर्षों तक तपस्या के उपरान्त हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वरदान माँगा। पहले उसने अमरत्व का वरदान माँगा किन्तु ब्रह्माजी वह नहीं दे पाए क्योंकि वह उनकी शक्ति से परे था। ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु को केवल यही वरदान दे पाए जिससे कि वह दिन में या रात में, हाथों से या अस्त्र से, अन्दर या बाहर, मानव या किसी अन्य प्राणी से ने मारा जा सके। इस महान् शक्ति को प्राप्त करने के उपरान्त हिरण्यकशिपु ने पूरे ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर ली और परम भगवान् विष्णु के प्रति शत्रुता कर ली।

किन्तु स्वयं हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद ने वास्तविक ज्ञान का पालन करते हुए अपने पिता द्वारा संचित शक्तियों का बहिष्कार कर श्रीविष्णु की आराधना की। इस प्रकार अपनी सभी शक्तियों के बावजूद भी हिरण्यकशिपु अपने ही पुत्र को भगवान् विष्णु की भक्ति छोड़ने के लिए बाध्य नहीं पर पाया, यद्यपि उसने प्रह्लाद को अनेक यातनायें देकर उसकी हत्या करने का भी प्रयास किया।

जैसे–जैसे हिरण्यकशिपु को अपनी शक्तियों की सीमितता स्पष्ट होने लगी, वह अधिकाधिक हिंसक और विनाशकारी बनने के लिए बाध्य हो गया। परिणामस्वरूप उसकी अस्थाई शक्तियों का अन्त हो गया। श्रीकृष्ण ने आधे मानव एवं आधे सिंह का अपना नृसिंह रूप प्रकट किया। लिया– संध्या समय हिरण्यकशिपु के साथ युद्ध करते हुए भगवान् ने महल की दहलीज पर अपने नाखूनों से उस असुर के जीवन का अन्त कर दिया। इस प्रकार भगवान् नृसिंह ने हिरण्यकशिपु की शक्तियों को पूरी तरह जड़ से उखाड़ते हुए यह सिद्ध कर दिया कि शक्तियाँ दूसरों पर निर्भर होती हैं, तथा ये सीमित, विनाशकारी और अस्थायी हैं।

महाशक्तियाँ

वर्तमान समाज की महान् शक्तियों में भी ये दोष देखे जा सकते हैं। वे शक्तियाँ निर्भर हैं क्योंकि वे पृथ्वी के संसाधनों पर निर्भर हैं, विशेष रूप से तेल पर। यह सीमित है क्योंकि इसके द्वारा विश्व को आतंक के भय से मुक्त नहीं किया जा सका है या अरब देशों के तेल–उत्पादन पर मजबूत नियंत्रण नहीं किया जा सका है। यह विनाशकारी है क्योंकि यह वातावरण को हानि पहुँचाती है और ऐसे बड़े–बड़े अस्त्रों का प्रयोग करती है जा अधिकाधिक विनाशकारी हैं। और जैसा कि समय बताएगा अन्ततः यह अस्थायी है, जिस प्रकार इतिहास में हमने अनेक बड़े–बड़े साम्राज्यों को उठते एवं गिरते हुए देखा है – कुब्लइ खान् के मंगोल साम्राज्य से लेकर सिकंदर के ग्रीक साम्राज्य तक, ओगुस्तस के रोम साम्राज्य, लुइस द सन किंग के फ्रांस साम्राज्य तक तथा विक्टोरिया के ब्रिटिश साम्राज्य और से आज के अमरीकी साम्राज्य तक।

अन्तिम शक्ति

फिर भी एक व्यक्ति है जो स्वतन्त्र,

असीमित, प्रेममयी और अनंत शक्ति रखता है, वे हैं भगवान् श्रीकृष्ण। भगवान् की शक्ति हमें केवल तभी तक रहस्यमयी प्रतीत होंगी जबतक हम सत्य से मुख मोड़कर स्वयं उन शक्तियों को प्राप्त करने का विफल प्रयास करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता (५.२९) में कहते हैं –

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

''मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का परम भोक्ता, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर एवं समस्त जीवों का उपकारी एवं हितैषी जानकर मेरे भावनामृत से पूर्ण व्यक्ति भौतिक दुःखों से शान्ति लाभ प्राप्त करता है।''

श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में बताते हैं –

माया के वशीभूत सभी बद्धजीव इस संसार में शान्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं। किन्तु वे भगवद्गीता के इस अंश में वर्णित शान्ति के सूत्र को नहीं जानते। शान्ति का सबसे बड़ा सूत्र यही है कि भगवान् कृष्ण समस्त मानवीय कार्यों के भोक्ता हैं।

मनुष्य को चाहिए कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की दिव्य सेवा में अर्पित करे क्योंकि वे ही समस्त लोकों तथा उनमें रहने वाले देवताओं के स्वामी हैं। उनसे बड़ा कोई नहीं है।

वे शिवजी तथा ब्रह्माजी जैसे महान् देवताओं से भी महान् हैं। वेदों में (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.७) *परम भगवान् को* तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् *कहा गया है।*

माया के वशीभूत होकर सभी जीव सर्वत्र अपना प्रभुत्व जताना चाहते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सर्वत्र भगवान् की माया का प्रभुत्व है। भगवान् प्रकृति (माया) के स्वामी हैं और बद्धजीव प्रकृति के कठोर अनुशासन के अन्तर्गत हैं।

जब तक कोई इन तथ्यों को समझ नहीं लेता तब तक संसार में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से शान्ति प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं है। कृष्णभावनामृत का यही अर्थ है। भगवान् कृष्ण परम नियन्ता हैं और देवताओं सहित सभी जीव उनके आश्रित हैं। पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहकर ही पूर्ण शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

जब हम अपनी शक्ति के सीमित, निर्भर, अस्थायी और विनाशकारी स्वभाव को स्वीकार करते हैं, हम स्वयं अपने अंतर्मन में, आपसी सम्बन्धों में और राष्ट्रों के बीच शान्ति की अनुभूति कर सकते हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम थोड़ी-सी भी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते। भगवान् के महान् भक्त इतने शक्तिशाली होते हैं कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते। किन्तु उनकी शक्ति अन्दर से आती है।

शुद्ध भक्त एवं कवि गोविंद दास द्वारा रचित *भजहू रे मन* भजन के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''मन को नियन्त्रित किए बिना तथा मन को विचलित न किए बिना कोई भी आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता... यदि हम अपने मन को श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में केन्द्रित करेंगे, वह स्वतः ही नियन्त्रित हो जाएगा... मन को नियन्त्रित करने की पद्धति का अर्थ है कि आप उसे श्रेष्ठ कार्य में लगायें। और तब मन बहिरंग शक्ति द्वारा आकर्षित नहीं होगा। यह सफलता का रहस्य है।''

श्रीकृष्ण भगवद्गीता में बताते हैं कि एक भक्त अपनी क्षमताओं और योग्यताओं के परिणामों को पूर्णतया भगवान् को समर्पित कर देता है और इस प्रकार वह सफलता प्राप्त करता है।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा
शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण
फले सक्तो निबध्यते।।

''निश्चल भक्त शुद्ध शान्ति प्राप्त करता है क्योंकि वह समस्त कर्मफल मुझे अर्पित कर देता है, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् से युक्त नहीं है और जो अपने श्रम के फल से आसक्त है, वह बँध जाता है।'' (भगवद्गीता ५.१२)

श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में बताते हैं –

एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति तथा एक देहात्मबुद्धि वाले व्यक्ति में यह अन्तर है कि पहला श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त रहता है जबकि दूसरा अपने कर्मों के फलों के प्रति आसक्त रहता है।

जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त रहकर उन्हीं के लिए कर्म करता है वह निश्चय ही मुक्त पुरुष है और उसे अपने कर्मफल की कोई चिन्ता नहीं होती। श्रीमद्भागवतम् में बताया गया है कि परमसत्य के ज्ञान के बिना द्वन्द भाव में कर्म करना ही किसी कर्मफल के प्रति उत्पन्न होने वाली चिन्ता का कारण है।

श्रीकृष्ण भगवान् हैं। कृष्णभावनामृत में कोई द्वन्द्व नहीं रहता। इसमें सबकुछ श्रीकृष्ण की शक्ति का विस्तार है और श्रीकृष्ण सर्वमंगलमय हैं। अतः कृष्णभावनामृत में सम्पन्न सारे कार्य परमसत्य के स्तर पर हैं, वे दिव्य होते हैं और उनका कोई भौतिक प्रभाव नहीं होता।

इस कारण व्यक्ति कृष्णभक्ति में शान्ति से पूरित रहता है। किन्तु जो इन्द्रियतृप्ति के लोभ में फँसा रहता है, उसे शान्ति नहीं मिल सकती। यही कृष्णभावनामृत का रहस्य है – यह अनुभूति कि श्रीकृष्ण से परे किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है, और वह स्तर पूर्ण शान्ति एवं अभय का स्तर है।

आज के समाज में अनेक उपलब्धियों एवं महान् शक्ति को प्राप्त करने के बावजूद भी मानव जाति असंतुष्ट है और वह तबतक असन्तुष्ट रहेगी जबतक हम अपनी भौतिक इच्छाओं से आसक्त हैं। पूरे विश्व में अपनी महान् सफलता प्राप्त करने के बावजूद भी – और वास्तव में हमारी सफलता के कारण ही – हम अपनी सीमितताओं से निराश हैं। फिर भी हमें विश्वास दिलाया जाता है कि यदि हम भौतिक शक्तियों की पूजा करेंगे तो हम सफल हो सकते हैं।

ऐसी पूजा शायद सफल हो जाए किन्तु इसके लिए बहुत बड़ा मूल्य देना होगा जैसा कि ऊपर श्लोक ५.१२ में बताया गया है। हमें परिणाम मिलते हैं किन्तु भौतिक इच्छाएँ हमें और अधिक इच्छाओं के जाल में फँसा देती हैं। और इसलिए करोड़पति असन्तुष्ट हैं क्योंकि वे अरबपति नहीं है, जबकि मृत्यु के समय इस दुनिया का सारा

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने प्राप्त की भगवद्गीता

डेविड कैमरॉन को भगवद्गीता भेंट करते श्रुतिधर्म दास

लंदन – हाल ही में हुए दीपावली उत्सव कार्यक्रम में इस्कॉन इंग्लैण्ड के अध्यक्ष श्रीमान् श्रुतिधर्म दास ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड कैमरॉन को उनके निवास १० डाउनिंग स्ट्रीट पर भगवद्गीता की एक प्रति भेंट दी।

भगवद्गीता प्राप्त करने पर प्रधानमंत्री ने कहा, ''मुझे याद है कुछ समय पहले मैं भक्तिवेदान्त मैनर में आया था और मुझे बहुत आनन्द मिला था। धन्यवाद। इस पुस्तक को मैं १० डाउनिंग स्ट्रीट पर रखूँगा।''

बैंक वालों का भक्ति उत्सव

केनैरी वार्फ, इंग्लैण्ड – ११ नवम्बर को २०० बैंक अधिकारी एवं व्यापारी प.पू.भक्तिचारु स्वामी द्वारा दिये गये दीपावली का संदेश सुनने के लिए बार्कलेज़ में एकत्र हुए। अधिकांश लोग गैर-भारतीय मूल के थे। आशिक पटेल के अनुसार, ''वेदों से आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने से हमारे यूरोपीय, अमरीकी और सभी पश्चिमी लोगों ने इसकी सराहना की है, क्योंकि इससे हमारे व्यवसाय तथा जीवन को एक दिशा मिलेगी।''

पूरब और पश्चिम का मिलन

प्रिंसटन, न्यू जर्सी, अमरीका – १३ नवम्बर २०१० शनिवार को ५०० से अधिक लोगों ने प्रिंसटन यूनिवर्सिटी में तीसरा दीपावली महोत्सव मनाया गया। अगस्त २००८ में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी चैपल में पहली बार मनाया गया उत्सव पिछले अस्सी वर्षों के इतिहास में पहला गैर-ईसाई कार्यक्रम था। इस अवसर पर कीर्तन और नृत्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस्कॉन भक्त मेयर काउंसिल में

१९९८ से हंगरी स्थित सोमोग्यवमोस में मेयर काउंसिल के लिए चुने जाने वाले सात लोगों में से एक इस्कॉन के भक्त होते हैं। इस वर्ष मेयर काउंसिल में केवल चार लोग होंगे, जिनमें से तीन भक्त होंगे। हंगरी में इस्कॉन के कृषिक्षेत्र सर्वाधिक सफल कृषिक्षेत्रों में से एक हैं। ''हम आरम्भ से ही स्थानीय सरकार में भाग ले रहे हैं, क्योंकि सभी जानते हैं कि हमने इस क्षेत्र के विकास के लिए कितनी बड़ी भूमिका निभाई है,'' हाल के चुनावों में उप-मेयर चुने गये राधाकृष्ण दास कहते हैं।

(बायें से दायें) पार्थदास (मेयर काउंसिल के सदस्य), राधाकांत दास (मेयर काउंसिल के सदस्य) राधाकृष्ण दास (उप-मेयर) एवं मरिना देकन्येने कारोली (मेयर)

धन शक्तिहीन हो जाता है।

वास्तविक रहस्य सर्वोच्च शक्ति को समर्पण करना है और पूर्णतया भगवान् पर निर्भर होना है। यह सभी भौतिक रहस्यों से परे का रहस्य है।

कृष्णभावना में मन नियन्त्रित किया जाता है, शक्ति का उपयोग अभयता, प्रेम और मुक्ति के लिए होता है। व्यक्ति भौतिक जगत् के द्वन्द्वों से मुक्त होकर वास्तविक सफलता प्राप्त करता है, किन्तु वह मुक्ति भौतिक शक्तियों द्वारा नहीं अपितु परम प्रेममय भगवान् के प्रति समर्पण द्वारा प्राप्त होती है।

कपिल मोनेट का जन्म १९७६ में वेंकूवर में श्रील प्रभुपाद के दो शिष्यों हरिलीला देवी दासी और निताइपाद दास के पुत्र के रूप में हुआ। वे दस वर्ष की आयु तक वेंकूवर गुरुकुल में रहे और बाद में वेंकूवर में सिमन फ्रेसर विश्वविद्यालय में शिक्षण प्राप्त किया। वे दस वर्षों से लन्दन में रह रहे हैं, जहाँ वे एक वित्तीय सूचना कम्पनी में कार्य करते हैं।

''मैं कभी नहीं रोता''

एक भ्रमणकारी प्रचारक अपने जीवन के प्रत्येक पहलु में अपने गुरु महाराज की कृपा का अनुभव करता है।

– इंद्रद्युम्न स्वामी

इस वर्ष पौलेण्ड में हरे कृष्ण उत्सव का आयोजन तपस्याभरा था – तंग आवासीय व्यवस्था, लम्बे कार्यक्रम और सामान्य से अधिक गरम मौसम। किन्तु हमारे तीन सौ भक्तों ने अपने इरादों को बुलन्द रखा हुआ था। कुछ के अनुसार इतने वर्षों में यह उनका सर्वश्रेष्ठ उत्सव रहा, जैसाकि सर्वाधिक लोगों द्वारा इसमें भाग लेने से भी यह सिद्ध होता है।

इस बार का सबसे महत्वपूर्ण पहलु अतिथियों द्वारा जताई जाने वाली प्रशंसा रही, जिसने इसे अन्य उत्सवों की अपेक्षा विशेष बना दिया। चूँकि अपने कार्यक्रम को विज्ञापित करने के लिए हमारे पास केवल एक हरिनाम करने का अवसर था, उसे आरम्भ करने से पहले मैंने भक्तों को तैयार करने के लिए कुछ शब्द कहे।

''आज अत्यन्त मनोरम दिन है,'' मैंने कहा, ''और समुद्रतट लोगों से भरा है। पूरे शहर में एक भी व्यक्ति नहीं जानता कि आज रात हम यहाँ उत्सव मनाने जा रहे हैं। दाहिनी ओर आप देख सकते हैं कि हमने तम्बू इत्यादि लगाने की व्यवस्था आरम्भ कर दी है। जर्मनी भाषा में एक शब्द आता है – ब्लिट्जक्रेग – अर्थात् किसी सेना द्वारा एक शहर पर बिजली के समान आक्रमण। तो आज प्रातः हम भी ब्लिट्जक्रेग करके सभी को आज रात्रि होने वाले अपने कार्यक्रम की जानकारी देना चाहते हैं।

सभी भक्त हर्षोल्लास से चीखे और अपने संकीर्तन अस्त्र-शस्त्र – मृदंग, जैंबे, करताल, झण्डे, बैनर इत्यादि – लेने की तैयारी करने लगे। मिनटों में समुद्रतट पर एक सौ साठ भक्तों का समूह आनन्दपूर्वक नृत्य और कीर्तन कर रहा था।

हम तट पर लोगों के बीच से जैसे-तैसे स्थान बनाकर चल रहे थे कि सभी ने उत्सुकतापूर्वक हमारे हाथों से निमंत्रण पत्र स्वीकार किये। आधे घण्टे पश्चात् हम रुके और त्रिभुवनेश्वर दास ने सभी का आमंत्रित करते हुए एक छोटा प्रवचन दिया। उसके बाद लोगों ने अपने हाथ खड़े करके कुछ प्रश्न पूछे। वे लोग जिन्होंने हमें पहले कभी नहीं देखा था, अन्यों द्वारा इतनी रुचि लेती देख भौंचक्के रह गये।

''इस साल क्या आप कुछ नया थियेटर लाने वाले हैं?'' एक व्यक्ति ने पूछा।

''क्या मुम्बई की सांख्य नृत्य-मण्डली फिर से अपना कार्यक्रम करेगी?'' एक अन्य ने पूछा।

''क्या इस बार भी बच्चों के लिए नृत्य-स्पर्धा है, जिसमें साड़ी इनाम में दी जाती है?'' एक स्त्री ने दूर से पूछा।

कीर्तन दल तट पर आगे बढ़ा और मैं भक्तों के कुछ बच्चों के साथ पीछे-पीछे चल रहा था।

''गुरु महाराज,'' एक लड़के ने पूछा, ''हमारा एक प्रश्न है। हम जानना चाहते हैं कि क्या आप कभी रोये हैं।''

मैं ठहर गया। ''क्या?'' मैंने पूछा।

''हम जानना चाहते हैं कि क्या आप कभी रोये हैं,'' उसने कहा। ''हम सदैव सुनते हैं कि कैसे भक्तों को श्रीकृष्ण के लिए रोना चाहिए।

मैं हँसने लगा। ''मैं उस स्तर पर नहीं हूँ,'' मैंने कहा।

''तो आप कभी नहीं रोते?'' एक लड़की ने पूछा।

''कभी नहीं,'' मैंने कहा।

हम तट पर चल ही रहे थे कि एक अधेड़ स्त्री दौड़ते हुए मेरे पास आई। उसके वस्त्र, आभूषण और घड़ी मूल्यवान लग रहीं थी।

''क्षमा करना स्वामीजी,'' उसने कहा। ''क्या मैं आपसे एक मिनट बात कर सकती हूँ?''

''हाँ, क्यों नहीं,'' मैंने अपने चारों ओर एकत्रित बच्चों को देखते हुए कहा, जो उत्सुकता से उस स्त्री के बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

''मेरी सहायता करने के लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहती हूँ,'' उसने कहा। ''मैं आपकी बहुत ऋणी हूँ।''

मैंने याद करने का प्रयास किया कि मैं कब और कहाँ उसके मिला था।

''कुछ दिन पहले मैंने कोलोब्रेज में हुए उत्सव में आपका प्रवचन सुना था,'' उसने कहना जारी रखा। ''मेरे मनोचिकित्सक ने मुझे आपका प्रवचन सुनने का परामर्श दिया था। उसने कुछ महीने पूर्व आपका प्रवचन सुना था और उसने मुझे बताया कि आपको सुनकर मैं अपनी समस्यायें सुलझा सकती हूँ।''

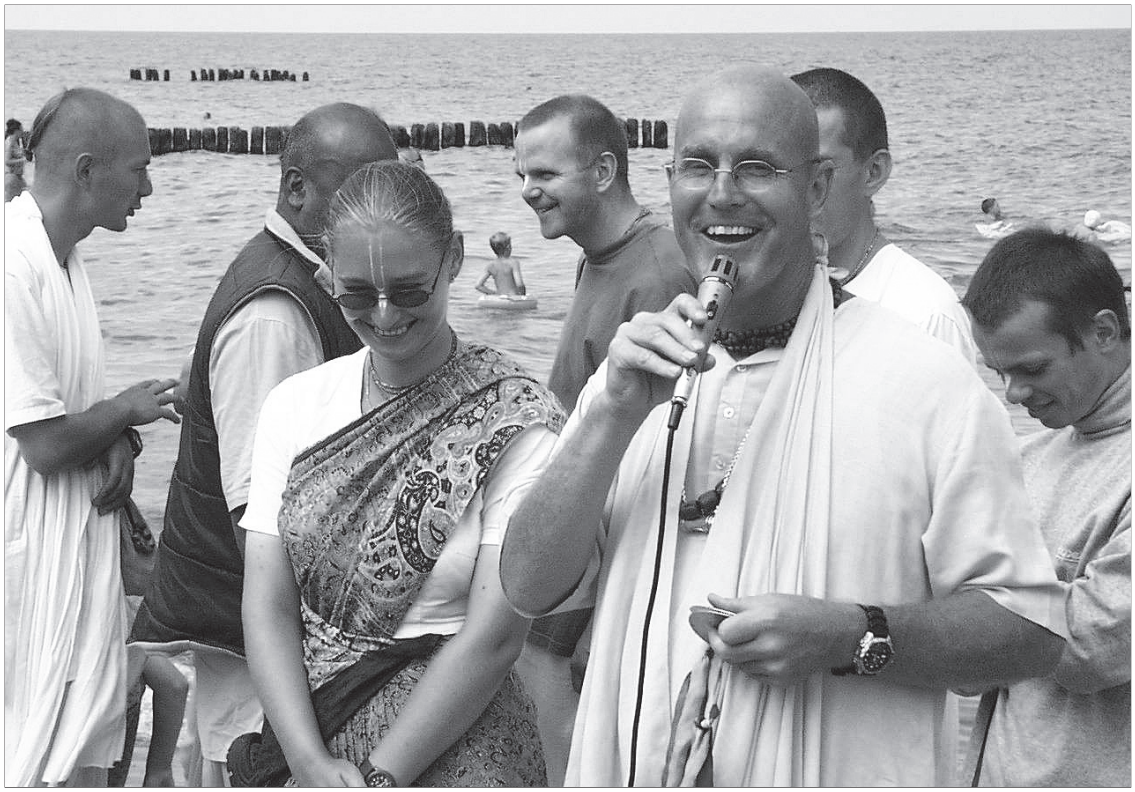

पोलैण्ड के समुद्री तट पर हरिनाम संकीर्तन करते प.पू. इन्द्रद्युम्न स्वामी

मैंने अनुभव किया कि मेरे चेहरे का रंग बदल गया था। ''ओह, बहुत धन्यवाद,'' मैंने कहा।

''आपका प्रवचन सुनकर,'' उसने कहा, ''मुझे लगा मानो मैं अपनी समस्याओं का सामना कर सकती हूँ। विशेष रूप से आपके द्वारा किया गया आध्यात्मिक जगत् का वर्णन अत्यन्त प्रेरणादायक था। अब मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा एक स्थान अवश्य है।''

उसने मेरे हाथ पकड़ लिए। ''आपका धन्यवाद करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है,'' उसने कहा। ''मैं आपकी बहुत आभारी हूँ।''

यह कहकर वह चली गई और मैं उसके इन सराहनीय शब्दों को सुनकर अभिभूत हो गया। अपने गुरु महाराज के प्रति गहन कृतज्ञता का अनुभव करते हुए मेरी आँखें नम हो गई और एक-दो आँसू मेरे गालों से होकर नीचे गिरने लगे।

मैंने तुरन्त उन्हें पोंछा और कीर्तन पार्टी की ओर मुड़ गया, किन्तु बच्चों ने मुझे देख लिया। ''आप भी रोते हैं गुरु महाराज!'' एक बच्चा चिल्लाया। ''देखो, देखो! आप रो रहे हैं! देखो!''

उस शाम उत्सव में अतिथियों का ताँता-सा लग गया। सैकड़ों लोग घूमते हुए विभिन्न प्रदर्शिनयों को देख रहे थे कि एक युवा दम्पत्ती अपनी छोटी पुत्री को उठाये दौड़ते हुए मेरे पास आये। उनकी साँस फूल रही थी।

''ओह, आखिर हम पहुँच ही गये!'' पति ने कहा।

मैं हँसने लगा। ''समुद्र तट से हमारा कार्यक्रम केवल पचास मीटर दूर ही है,'' मैंने कहा।

''नहीं,'' पति ने कहा। ''मैं आपको बताता हूँ। पिछले वर्ष हम यहाँ आपके उत्सव में आये थे। उस समय हमारी बेटी चार वर्ष की थी और उसने बहुत मजा लिया। तबसे वह केवल आपके उत्सव की ही बातें करती है। बस और कुछ नहीं।''

''हाँ, सच में,'' पत्नी के कहा। ''वह भारतीय नर्तकों की, कठपुतलियों की, गीत-संगीत की, जादू के खेल की, स्वादिष्ट भोजन की और साड़ियों की, विशेष रूप से साड़ियों की। प्रत्येक रात्रि सोने से पहले वह नाचने का अभ्यास करने पर जोर देती है जिससे अगले उत्सव में वह साड़ी जीत सके।''

''हाँ,'' पति ने कहा, ''और सुबह उठते ही उसका पहला प्रश्न होता है, 'हरे कृष्ण उत्सव के लिए अभी कितने दिन और बचे हैं?' ''

उस लड़की की माँ हँसने लगी। ''तो आप सोच सकते हैं कि यहाँ पहुँचकर हमें कितनी राहत मिली होगी,'' उसने कहा।

मंच पर कार्यक्रम आरम्भ हुए और मैंने उत्सव का आनन्द उठाते लोगों के बीच घूमकर उन्हें देखने लगा। शीघ्र ही भक्तों के बच्चों का वही समूह फिर से मेरे पास आ गया। चलते-चलते एक छोटी लड़की दौड़ती हुई हमारे पास आई।

''हरे कृष्ण!'' रोमांचित हो उसने कहा। ''मेरा नाम आनिया है। आपको वापस यहाँ देखकर बहुत अच्छा लग रहा है।''

''हरे कृष्ण आनिया,'' मैंने कहा। ''तुम पहले भी हमारे उत्सव में आई हो?''

''हाँ,'' एक बड़ी मुस्कान के साथ उसने कहा। ''जब मैं पहली बार आई उस समय मैं केवल दो सप्ताह की थी। अब मैं नौ वर्ष की हूँ और हर साल यहाँ आती हूँ।''

''क्या?'' मैंने कहा। ''तुम जब पहली बार आई उस समय केवल दो सप्ताह की थी?''

''हाँ,'' उसने कहा। ''मेरा घर सड़क के ठीक उस पार है। जब आप लोग पहली बार यहाँ आये उस समय मेरा जन्म हुआ ही था। मेरी माँ ने खिड़की से आपके उत्सव को देखा

और मुझे यहाँ लेकर आई। जब मैं छोटी-सी थी पहली बार मेरे चेहरे पर गोपी-बिंदिया लगाकर सजावट की गई।''

तभी एक और लड़की दौड़ती हुई आई।

''यह डोरोथा है,'' आनिया ने कहा। ''यह मेरी सबसे प्रिय सहेली है और हमारे पड़ोस में रहती है। यह भी दो वर्ष की उम्र से इस उत्सव में आ रही है।''

''और मैं हर साल साड़ी जीतती हूँ,'' गर्व से डोरोथा ने कहा। ''मैंने सात साड़ी जीती हैं किन्तु उनमें से चार मैंने अपनी दादी को दे दीं क्योंकि उन्हें घर में रहते हुए साड़ी पहनना अच्छा लगता है।''

''वाह!'' मैंने कहा। ''और हमारे उत्सव में तुम्हें सबसे अच्छा क्या लगता है डोरोथा? नृत्य? कठपुतली का खेल? या भोजन?''

''नहीं,'' उसने कहा। ''आपके उत्सव की सबसे अच्छी चीज है उसके अन्त में होने वाला आपका प्रवचन। वह मुझे सर्वाधिक प्रिय है। दादी को भी बहुत अच्छा लगता है। वे बहुत बूढ़ी हो गई हैं इसलिए बाहर नहीं जा पातीं, किन्तु जब भी आपका प्रवचन होता है वे मम्मी को लेकर अवश्य आती हैं। वे कहती हैं कि पूरी दुनिया में आप उनके सबसे प्रिय साधु हैं क्योंकि आप खेल-खेल में भक्ति और धर्म सिखाते हैं।

मैं आगे बढ़ने ही वाला था कि एक और लड़की आ गई।

''यह इवा है, मेरी एक और प्रिय सहेली,'' आनिया ने कहा। ''यह तीन वर्ष की उम्र से आपके उत्सव में आ रही है।''

''मैं प्रतिदिन आपको फेसबुक पर देखती हूँ,'' इवा ने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा।

''सच में?'' मैंने कहा। ''तुम्हारी मम्मी तुम्हें फेसबुक देखने देती हैं? तुम इतनी छोटी हो।''

इवा हँसने लगी। ''हाँ,'' वे कहती हैं। ''वे मुझे इसलिए फेसबुक देखने देती हैं क्योंकि मेरा एक ही फेसबुक मित्र है - और वे आप हैं। जब मैं चार वर्ष की थी आपने मुझे एक हार दिया था और वह अभी भी मेरे कमरे में लटक रहा है। जब मैं छह वर्ष की थी मेरी बाँह टूट गई थी और आपने मेरे पलस्तर पर अपने हस्ताक्षर किये थे, और वह भी मेरी दीवार पर लटक रहा है। मैं अपनी मम्मी, पापा, अंकल, आंटी, दादा और यहाँ तककि अपनी संगीत टीचर को भी, किन्तु पूरे संसार में आप मेरे सर्वप्रिय हैं क्योंकि आपने मुझे सर्वाधिक प्रेम दिया है, हालाँकि मैं वर्ष में केवल एक बार ही आपसे मिल पाती हूँ।''

''सच में,'' मैंने कहा, मेरी आवाज थर्रायी और चेहरे का रंग बदल गया। वे भक्त बच्चे एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

''जब मैं पहली बार आई उस समय मैं केवल दो सप्ताह की थी। अब मैं नौ वर्ष की हूँ और हर साल यहाँ आती हूँ।''

''देखो?'' एक लड़की ने मुस्कुराते हुए दूसरी से कहा। ''ये फिर से रोने वाले हैं।''

मैंने अपना सिर खुजलाया और गला साफ किया। ''इवा, तुम्हें हमारे उत्सव में सबसे अच्छा क्या लगता है?'' मैंने पूछा

उसने एक क्षण के लिए सोचा। ''कृष्ण,'' वह बोली।

''आश्चर्य है,'' मैंने कहा। ''और तुम्हें आनिया?''

''राधारानी, कृष्ण की गर्लफ्रैंड,'' उसने कहा।

मैं कहने ही वाला था, ''तुम्हें राधारानी के विषय में कैसे पता?'' किन्तु मैं रुक गया।

''क्यों न हम रेस्टोरेन्ट में चलकर कुछ खायें?'' मैंने कहा।

''वाह!'' आनिया चिल्लाई। ''बर्फी!''

''और समोसा!'' इवा चिल्लाई।

रेस्टोरेन्ट में छोटी पार्टी के बाद मैंने अपना भ्रमण बन्द किया और कार्यक्रम की स्थिति देखने के लिए मंच के पीछे गया। सबकुछ ठीक चलते देख मैंने थोड़ा आराम करने का निश्चय किया। पैंतालिस मिनट बाद एक भक्त मुझे झकझोरने लगा। ''हरिबोल महाराज,'' उसने कहा, ''उठ जाइये। प्रवचन का समय हो गया है।''

मैं उछल कर खड़ा हुआ, मुँह धोया और त्रिभुवनेश्वर द्वारा दिया जा रहे मेरे परिचय के समाप्त होने से पहले मंच पर पहुँच गया। पाँच सौ श्रोता अपेक्षाओं के साथ मुझे देख रहे थे।

हालाँकि मैं सोकर उठा था मुझे बोलने में कोई कठिनाई थी। इस प्रकार के प्रवचन मैंने पहले हजारों बार दिये हैं, किन्तु हर बार मैंने उन्हें तरोताजा पाया है, मानो पहली बार बोल रहा हूँ। मेरे लिए यह पूरे उत्सव का चरमोत्कर्ष था क्योंकि अपने अतिथियों को कृष्णभक्ति का विलक्षण ज्ञान सुनाने का यह विलक्षण अवसर था।

प्रवचन के पश्चात् पैंतालिस मिनट का गुंजायमान कीर्तन हुआ और सर्वश्रेष्ठ नर्तकों को साड़ियाँ दी (डोरोथा ने अपनी आठवीं साड़ी जीती)। उत्सव समाप्त हुआ, और जैसे ही मैं सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था मैंने एक स्त्री को हाथ में भगवद्गीता लिए प्रतीक्षा करते देखा।

साथ ही वे भक्त-बच्चे भी मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे और जैसे ही वह स्त्री भगवद्गीता देने के लिए आगे बढ़ी उन बच्चों ने मुझे घेर लिया। ''आपने अपने प्रवचन में कहा था कि यदि कोई भगवद्गीता खरीदता है तो आप उसपर हस्ताक्षर करेंगे,'' उसने कहा।

''हाँ, क्यों नहीं,'' मैंने कहा।

''और क्या आप अपना ई.मेल भी लिख सकते हैं?'' उसने कहा। ''मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूँ।''

''अवश्य,'' मैंने उत्तर दिया। ''मैं जो भी जानता हूँ वह मैंने इस पुस्तक और अपने गुरु महाराज से सीखा है।''

अंदर पृष्ठ पर हस्ताक्षर करने के लिए मैंने पुस्तक खोली और उससे पूछा, ''क्या मैं पूछ

सकता हूँ कि आप क्या करती हैं?'' मैंने कहा।

''मैं पोलैण्ड हाईकोर्ट में जज हूँ,'' उसने कहा।

मैंने धीरे-से और ध्यानपूर्वक हस्ताक्षर किये और अपना ई.मेल पता लिखा।

बच्चे मेरे साथ मेरी वैन तक जा रहे थे कि एक नवदम्पत्ती ने हमें रोक लिया और अभी-अभी खरीदी भगवद्गीता पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा।

''इस पुस्तक को खरीदने के लिए मैं सत्रह वर्ष से प्रतीक्षा कर रहा था,'' पुरुष ने कहा।

''सत्रह वर्ष?'' मैंने कहा।

वह हँसा। ''हाँ,'' उसने कहा। ''१९९३ में आपकी टोली यहाँ से पचास किलोमीटर दूर स्थित हमारे शहर में आई थी। उस समय मैं मात्र सात वर्ष का था। मैं पूरे पण्डाल में अन्य बच्चों के साथ खेलता हुआ मजे ले रहा था, किन्तु जब आप मंच पर आये और प्रवचन आरम्भ किया, मुझे स्मरण है कि पूरा वातावरण बदल गया। यहाँ तककि बच्चे भी रुककर सुनने लगे।

''आपने जो कहा मुझे कुछ समझ नहीं आया, किन्तु मुझे इतना अवश्य याद है कि वह एक विशेष क्षण था। मुझे याद है कि बाद में अनेक लोगों ने पुस्तक खरीदी और मैंने सोचा कि एक दिन मैं भी एक पुस्तक लूँगा।

''मेरी भावी पत्नी भी उस उत्सव में थी किन्तु हम बच्चे एक-दूसरे को नहीं जानते थे। वर्षों पश्चात् हमारा विवाह हुआ और एक दिन बात करते-करते हमें पता चला कि हम दोनों आपके उत्सव में आये थे और हम दोनों ने उस विशेष क्षण का स्मरण किया जब आपके मंच पर आते ही पूरा वातावरण बदल गया था। कल ही हमें पता चला कि आज यहाँ आपका उत्सव होने वाला है, तो हम पुनः इसमें भाग लेने और अनेक वर्षों पश्चात् इस पुस्तक को खरीदने आ गये।''

मैंने उनकी भगवद्गीता में लम्बा संदेश लिखा।

''आश्चर्य है,'' मैं सोचने लगा। ''इस बार उत्सव के प्रत्येक पग पर कुछ विशेष घट रहा है।''

किन्तु आश्चर्यजनक घटनायें अभी समाप्त नहीं हुई थीं।

वैन में बच्चे मेरी सहायता कर रहे थे कि लगभग बीस वर्ष का एक युवक दौड़ता हुआ मेरे पास आया। ''क्षमा करना,'' उसने कहा। ''मैं जानता हूँ कि आप व्यस्त हैं और थक भी गये होंगे, किन्तु इससे पहले आप चले जायें मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।''

''हाँ, कृपया कहिये,'' वैन से बाहर निकलते हुए मैंने कहा। ''मेरा समय आपके लिए ही है।''

''पिछले वर्ष मैं अपनी छोटी बहन के साथ आपके उत्सव में आया था,'' उसने कहा। ''वह सोलह वर्ष की थी, और वह हमारा पहला उत्सव था। मेरी बहन को कार्यक्रम के अन्त में होने वाला हरे कृष्ण का कीर्तन वशेष रूप से अच्छा लगा। उसने उसे याद कर लिया और अकसर घर में उसी गाती रहती।

''छह महीने पहले हमें पता चला कि उसे कैंसर है। कैंसर पूरा फैल चुका था और उसका कोई उपचार नहीं था। वह पहले से ही क्षीण होने लगी थी। एक शाम मैं अपने कॉलेज में था कि उसका फोन आया। वह ठीक से बोल भी नहीं पा रही थी, फिर गाने का तो प्रश्न ही नहीं था। उसने मुझसे निवेदन किया कि मैं प्रत्येक रात्रि उसके सोने से पहले फोन पर हरे कृष्ण का कीर्तन करूँ।

''हर शाम मैं छह बजे से नौ बजे तक फोन पर हरे कृष्ण का कीर्तन करता। ऐसा दो महीने तक चलता रहा। एक रात्रि मेरे गाने के दौरान उसने शरीर छोड़ दिया। मुझे इसका तबतक नहीं पता चला जबतक मेरी माँ ने फोन अपने हाथ में लेकर नहीं बताया कि मेरी बहन जा चुकी थी। मैं अनेक दिन तक रोया। मेरी बहन मेरी सबसे अच्छी मित्र थी और अब मेरी पूरी दुनिया धुँधली हो गई है।

''मेरी बहन को उस गीत से प्रेम था और अपने अंतिम समय में वह उसे ही सुन रही थी। न जाने क्यों मुझे अपने दिल में गहरा विश्वास है कि वह गीत उसे किसी विशेष स्थान पर लेकर गया है, ऐसा स्थान जो पीड़ा और वेदनाओं से परे है, ऐसा स्थान जहाँ लोग आपके समान सदैव प्रसन्न रहते हैं। आपको क्या लगता है, यह सच हो सकता है?''

मैंने उत्तर देने का प्रयास किया, किन्तु मेरी आवाज रुंध गई। मैंने उस युवक की सहमति में मैंने अपना सिर हिला दिया। मैंने आँसुओं से भरी अपनी आँखें बंद कर लीं और उसे गले से लगा लिया।

न जाने क्यों मुझे अपने दिल में गहरा विश्वास है कि वह गीत उसे किसी विशेष स्थान पर लेकर गया है, ऐसा स्थान जो पीड़ा और वेदनाओं से परे है।

तभी मुझे उन बच्चों का स्मरण हुआ जो फिर से मुझे चिढ़ाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु इस बार उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब मैंने अपनी आँखें खोली तो वे सब भी रो रहे थे।

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं -

''क्या आजतक किसी ने सुना था कि प्रेम जैसी कोई वस्तु जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है? क्या किसी को हरिनाम की दिव्य शक्तियों का ज्ञान था? क्या किसी ने वृन्दावन के मधुर मनोहारी वनों में प्रवेश किया था? क्या कोई जानता था कि श्रीराधारानी सर्वोच्च आनन्द की मूतिमान् स्वरूपा हैं? केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु की अगाध करुणा से इन दुर्लभ रत्नों की खोज हो पाई है, जो उनकी उदारता रूपी चन्द्रकिरणों से प्रकाशित होकर कलियुग के अंधकार में चमचमा रहे हैं।''

(श्रीचैतन्य चन्द्रामृत, श्लोक संख्या १३०)

प.पू.इन्द्रद्युम्न स्वामी श्रील प्रभुपाद के वरिष्ठ शिष्य हैं एवं विश्वभर में भ्रमण करते हुए कृष्णभावना का प्रचार करते हैं।

समाज की सम्पूर्ण सेवा

किस प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन सामान्य समाज कल्याण कार्यों की अपेक्षा सामाजिक समस्याओं का बेहतर समाधान प्रदान करता है।

– चैतन्य चरण दास

क्या आध्यात्मिकता अन्य समाज कल्याण कार्यों के समान किसी व्यावहारिक रूप से समाज को लाभान्वित करती है? मैं एक व्यापक सामाजिक समस्या भुखमरी के विश्लेषण द्वारा इस प्रश्न पर अपने विचार प्रस्तुत करूँगा और फिर उस विश्लेषण द्वारा ज्ञात सिद्धान्तों का सामान्यीकरण करूँगा।

भुखमरी का कारण

किसी भिखारी को भूख से पीड़ित देखकर कोई भी सज्जन व्यक्ति उसे कुछ भोजन देना चाहेगा। यह कार्य भिखारी को तात्कालिक शान्ति प्रदान करेगा, किन्तु एक विचारवान व्यक्ति सोचेगा – ''अब से कुछ घण्टों पश्चात् यह फिर से भूखा हो जायेगा। किस कारणों से इस भिखारी को यह दरिद्र स्थिति प्राप्त हुई है? और किस प्रकार हम उन कारणों को दूर कर सकते हैं?''

भुखमरी के कुछ कारण निम्नलिखित हैं –

१. गरीब लोगों की मनमौजी जीवनशैली तथा आत्मघाती व्यवहार। कई लोग उतना ही कमा पाते हैं जिससे केवल जीवनयापन हो सके, परन्तु वे अपनी कमाई को शराब, तँबाकू तथा अन्य मादक द्रव्यों पर फिजूलखर्च कर देते हैं। अनेक परिवार इसलिए अपना सबकुछ खो देते हैं क्योंकि उन परिवारों के प्रमुख लोग अत्यधिक नशा करते हैं। ऐसा सामान्यतः देखा जाता है कि भिखारी खाने-पीने की वस्तुएँ लेने से इंकार कर देते हैं, और वे केवल धन की माँग करते हैं – सिगरेट इत्यादि खरीदने के लिए। भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदायें मादक-पदार्थ-विक्रेताओं के व्यवसाय के लिए अच्छा अवसर होती हैं क्योंकि विपत्तिग्रस्त लोगों में से बहुत से लोग मुआवजे के लिए प्राप्त धनराशि का प्रयोग अपने दुःख को नशे के सहारे भूलने के लिए करते हैं। व्यसनग्रस्त लोगों को भौतिक सहायता देना क्या छेद वाली बाल्टी में जल भरने के समान नहीं है? उन्हें चाहे जितनी भी सुविधायें क्यों न दी जायें जब तक वे अपने आदतें नहीं सुधारते उनकी स्थिति पूर्ववत् ही रहेगी। न तो सरकारी और न ही गैर-सरकारी संस्थायें बुरी आदतों द्वारा होने वाली आत्महनन की दुर्घटना के निवारण में सफल हुई हैं।

२. लोभ और शोषण – भुखमरी का

रथयात्राओं के दौरान अनेक लोग भगवान् के नाम सुनने एवं भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं।

कारण खाद्य उत्पादों का अभाव नहीं अपितु उनका दुश्प्रबन्ध है। महात्मा गाँधी सटीक शब्दों में कहते हैं, ''इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, परन्तु उनके लोभ के लिए नहीं।'' फ्राँसिस मूल लेप अपनी पुस्तक ''फूड फर्स्ट'' में स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि विश्व के श्रेष्ठ भूखण्डों में से अधिकांश भूमि का दुरुपयोग नकद-निर्यात फसलों को उगाने के लिए किया जाता है। अतएव लोभ ही सुसम्पन्न समाज में भुखमरी का एकमात्र कारण है।''

दो राय नहीं कि भुखमरी की समस्या अकाल जैसी प्राकृतिक समस्याओं के कारण भी होती है। परन्तु ऐसी आपदाओं के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया उन समस्याओं को और बढ़ा देती है। ''फूड फर्स्ट'' अफ्रीका में हुए अकालों के अध्ययन का विवरण प्रस्तुत करते हुए दर्शाती है कि प्रत्येक अकाल के दौरान प्रभावित देशों के पास अपने भूखे नागरिकों का पोषण करने पर्याप्त खाद्य संसाधन उपलब्ध थे, परन्तु आर्थिक अथवा राजनैतिक उद्देश्यों के कारण उन्हें रोके रखा गया। अनाज की जमाखोरी कर व्यापारी लोग कृत्रिम तंगी उत्पन्न करके अधिक लाभ कमाना चाहते थे, अथवा विरोधी नेतागण अकाल प्रभावित क्षेत्रों को सहायता से वंचित करके वर्तमान नेताओं के साथ अपना पुराना हिसाब-किताब चुकता करना चाहते थे। कई बार तो अनाज गोदामों में सड़ता रहा, जबकि लोग भुखमरी से मर रहे थे। या इससे भी बुरा यह हुआ कि फसलों को या तो जला दिया गया या उन्हें समुद्र में डुबो दिया गया। विश्व के अनेक भागों में जहाँ भी प्राकृतिक विपदायें आती हैं, अफ्रीका की दुःखद कहानी ही दोहराई जाती है।

अतः भुखमरी का छिपा कारण लोभ है। क्या भौतिक रूप से कल्याणकारी संस्थायें अथवा कार्य लोभ का मुकाबला कर सकते हैं? एक समाजसेवक किसी धनी व्यक्ति से दान प्राप्त करके राहत कार्यों में उसका प्रयोग कर सकता है, परन्तु जबतक धनी व्यक्ति लोभवश निर्धनों का शोषण करने के लिए प्रेरित होते रहेंगे समाज कल्याण द्वारा दी गई सहायता रेगिस्तान में पानी की एक बूँद से कुछ अधिक कार्य नहीं कर पायेगी।

वैदिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारतवर्ष के वैदिक ग्रन्थ जीवन की

गहरी समझ पर आधारित समाजकल्याण की एक सम्पूर्ण योजना प्रदान करते हैं। किस प्रकार ये पुस्तकें भुखमरी की समस्या का समाधान करेंगी, आइये आधारभूत वैदिक दर्शन पर एक त्वरित् दृष्टि डालें।

वैदिक शिक्षायें स्पष्ट बताती हैं कि हम शाश्वत आत्मा हैं जो अस्थाई भौतिक शरीर से ढकी है। (भगवद्गीता २.१३) हम एक अनश्वर संसार से सम्बन्ध रखते हैं जहाँ हम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रेमभरे सम्बन्धों का आस्वादन करते हैं। हम उस प्रेम का पूर्ण अनुभव कर सकें, इसलिए श्रीकृष्ण हमें स्वतन्त्र इच्छा प्रदान करते हैं; हम चाहें तो उनसे प्रेम करें या नहीं। जब हम अपनी स्वतन्त्र इच्छा का दुरुपयोग करके उनसे अलग आनन्द भोग करना चाहते हैं तो हमें भौतिक जगत् में भेज दिया जाता है। यहाँ आकर हम अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूलकर स्वयं को यह शरीर मानने लगते हैं, जो भौतिक जगत् रूपी विदेशी वातारण के साथ व्यवहार करने के लिए हमें इन्द्रियाँ प्रदान करता है।

शारीरिक भ्रम में हम अपने सपनों एवं योजनाओं के अनुसार भौतिक सम्बन्धों, अनुभवों, सम्पत्ति और उपाधियों को प्राप्त करना चाहते हैं। किन्तु भोग करने की हमारी इच्छा असीमित है, जबकि इस संसार के संसाधन सीमित हैं। परिणामस्वरूप सुख की खोज हमें घोर संघर्ष की ओर ले जाती है।

इतना ही नहीं, मूल रूप से आध्यात्मिक होने के कारण हम कभी भी शारीरिक भोग से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, उसी प्रकार जैसे केवल कार में पैट्रोल डालने से चालक का पोषण नहीं होता। तो भौतिक भोग की हमारी योजनायें सफल हों या नहीं हम अधिकतर असन्तुष्ट ही रहते हैं। और ज्यों-ज्यों बिमारियों, बुढ़ापे और अन्ततः मृत्यु हमारे शरीर पर आक्रमण करती है, त्यों-त्यों हमारे सभी सपने भयानक स्वप्नों में परिवर्तित होने लगते हैं। हर बार मनुष्य शरीर में मरने के पश्चात् अपनी इच्छाओं एवं कार्यों के अनुसार हमें मानव अथवा निम्न योनियों में शरीर मिलता है और हमारा संघर्ष जारी रहता है।

केवल मनुष्य शरीर में ही जीवात्मा के पास भौतिक जगत् में अपनी दुर्दशा को समझने तथा उससे बाहर निकलने की पर्याप्त चेतना होती है। इसलिए वैदिक शास्त्र मनुष्यों को आध्यात्मिक कल्याणकार्यों के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि भौतिक कल्याणकार्यों को प्रभावशाली रूप से कार्यान्वित करने का यही पूर्ण मार्ग है।

आध्यात्मिक मार्ग से भुखमरी का अंत

आइये भुखमरी की समस्या पर लौटें और देखें कि किस प्रकार आध्यात्मिक कार्यों को बढ़ावा इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है।

१. आत्मसंयम - शोध प्रमाण दर्शाते हैं कि धर्मपरायण लोगों का बुरी आदतों के शिकार होने की सम्भावनायें बहुत कम होती हैं। डॉ.पैट्रिक गिल्न अपनी पुस्तक ''गॉड - दी एविडेंस'' में लिखते हैं, ''मानसिक स्वास्थ्य सुधारने एवं आत्मविनाशी व्यवहार के समाधानों की खोज करने पर पाया गया है कि दृढ़ धार्मिक विश्वास से श्रेष्ठ अन्य कोई समाधान नहीं है।'' आध्यात्मिकता का पालन भुखमरी की ओर ले जाने वाली बुरी आदतों को छोड़ने में सहायता करता है।

२. करुणा - जीवन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण करुणा को बढ़ाता है तथा लोभ को घटाता है। जब एक पत्रकार ने मदर टेरिसा से उनके दयाभाव के विषय में पूछा तो उन्होंने अपनी जपमाला की ओर संकेत किया। ईश्वर के प्रति भक्ति स्वाभाविक रूप से हमारे हृदय में उनकी सभी संतानों, जो हमारे भाई-बहन हैं, उनके प्रति दयाभाव जागृत करता है तथा हमें उन सबके समग्र उत्थान के लिए निष्काम सेवा करने की प्रेरणा देता है।

जब धनवान व्यक्ति भगवान् के भक्त बन

भक्त अकसर रथयात्राओं का आयोजन करते हैं, जिससे भाग लेने वाले लोगों को हरिनाम संकीर्तन सुनने का अवसर प्राप्त होता है (दायें, नीचे)।
जब लोग भगवान् का प्रसाद खाते हैं तो न केवल उनके शरीर का पोषण होता है, अपितु उन्हें शाश्वत आध्यात्मिक लाभ भी मिलता है (दायें, ऊपर)

जाते हैं तो उनकी दया कभी-कभार दिये जाने वाले दान तक सीमित नहीं रहती, अपितु वे अपना सम्पूर्ण जीवन अभावग्रस्त लोगों की भौतिक एवं आध्यात्मिक हर सम्भव सहायता करने के लिए समर्पित कर देते हैं। जब राज्य के अधिकारीगण आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध हो जाते हैं तो वे नागरिकों का पालन अपनी संतान के रूप में करते हैं - किसी राजनैतिक स्वार्थभरे कारणों से नहीं अपितु आध्यात्मिक प्रेम के कारण। सामान्य स्थितियों में वे सभी के लिए रोजगार की और आपातकालीन स्थितियों में राहतकार्यों की व्यवस्था करते हैं।

इस प्रकार आस्तिकता सात्विकता को जन्म देती है; भगवान् में श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति स्वतः ही आत्मसंयम और करुणा जैसे गुण विकसित कर लेता है, जो किसी भी समाज-कल्याणकार्य को वास्तविक रूप से प्रभावशाली बनाने के लिए परमावश्यक गुण हैं।

३. प्राकृतिक समृद्धि - वैदिक ग्रंथ वर्णन करते हैं कि भगवान् से सामंजस्य स्थापित करना न केवल अगले जन्म को अपितु हमारे वर्तमान जीवन को भी सुन्दर बनाता है। हमारा सम्पूर्ण अस्तित्त्व भगवान् की कृपा पर अवलम्बित है। विज्ञान की प्रगति की अपेक्षा भी हमें प्रकाश, वायु, जल तथा अन्न के लिए भगवान् की आवश्यकता होती है। जटिल कारखानों में कठोर परिश्रम के बाद भी हमारा भोजन भगवान् के प्रकृति रूपी कारखाने में ही बनता है।

जब हम भगवान् के निर्देशों की अवहेलना करते हैं तो वे प्रकृति के माध्यम से हमारे जीवन की आवश्यकताओं पर रोक लगा देते हैं। जब हम उनके साथ सामंजस्य में रहते हैं तो वे माँ रूपी प्रकृति को अपने आज्ञाकारी बच्चों की सभी आवश्यकतायें पूरी करने का निर्देश देते हैं।

यह सोचना कोरी कल्पना नहीं है कि भक्त बनने से हम समृद्ध हो जायेंगे; भगवद्केन्द्रित वैदिक समाज का इतिहास इसका साक्षी है। समृद्धशाली भारत का इतिहास वैदिक शास्त्रों के अतिरिक्त मध्यकालिन इतिहासवेत्ता फा हेन एवं ह्यू सांग और आधुनिक भारतीय इतिहासवेत्ता ए.एल.बैशम द्वारा भी वर्णित है। वास्तव में भारत की धन-सम्पत्ति के लिए नये समुद्री मार्ग की खोज में ही अमरीका की खोज हुई थी, जो आज सर्वाधिक धनी देश बन चुका है।

क्या अच्छी भावनायें पर्याप्त हैं?

श्रील प्रभुपाद अपने जीवन की एक घटना से अच्छी भावनाओं से किये गये आधे-अधूरे कल्याणकार्यों की खामियों का वर्णन करते थे। एक बार कलकत्ता में उन्होंने अपनी एक पड़ोसन को अपने सबसे छोटे बेटे को डाँटते हुए देखा। उसके बड़े बेटे को टाइफॉइड था और डॉक्टर

ने उसे किसी भी प्रकार का ठोस भोजन खाने से मना किया था। जब माँ बाजार गई हुई थी तो उसके बीमार पुत्र ने अपने छोटे भाई से खाने के लिए परांठा माँगा, जो उसने दे दिया। लौटने पर माँ ने बड़े बेटे की हालत को और अधिक नाजुक पाया और उसकी ''दया'' के लिए उसे फटकारा।

एक शराबी की कल्पना कीजिए जो अपनी सारी कमाई नशे में उड़ा देता है और धुत्त होकर अपने परिवारवालों को पीटता है। जब वह बीमार होता है तो उसे निःशुल्क चिकित्सा सुविधा प्राप्त होती है जो उसकी बीमारी को तो दूर करती है परन्तु उसकी बुरी लत को नहीं। वह शराब पीना और पत्नी-बच्चों को पीटना जारी रखता है। निःशुल्क चिकित्सा सेवा का उद्देश्य उसे बीमारी से मुक्त करने तक ही सीमित है, किन्तु वह समस्या को जड़ से नहीं सुलझाता। श्रील प्रभुपाद अकसर आध्यात्मिकविहीन समाजकल्याण के प्रयासों की तुलना कष्टदायक फोड़े पर फूँक मारने से करते थे। केवल अच्छी भावनायें स्थाई समाधान देने में विफल रहती हैं।

हरे कृष्ण आन्दोलन आध्यात्मिक ग्रंथों का वितरण करके समाजसेवा करता है सम्पूर्ण विश्व में इस कार्य से हजारों लोग लाभान्वित हुए हैं।

वैदिक शास्त्र बताते हैं कि कष्ट और पीड़ायें हमारी चेतना को आध्यात्मिक स्तर तक उठाने में सहायक हैं, जहाँ पहुँचकर हम पुनः शाश्वत सुख के अधिकारी बन जाते हैं। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''इस संसार की समस्यायें अप्रत्यक्ष रूप से स्मरण कराती हैं कि जड़पदार्थ और जीव दोनों बेमेल हैं।'' इसे भली-भाँति समझने के लिए हमें एक कड़वी दवाई पीनी होगी - हमें इस सत्य को स्वीकारना होगा कि यह संसार एक जेल है और भगवान् से विद्रोह करने के कारण हम सभी को यहाँ बंदी बनाकर रखा गया है। इस संसार के कष्ट हमें सुधारने हेतु हैं।

मान लीजिए एक कल्याणकर्ता किसी अपराधी को निम्न दर्जे की जेल से स्थानान्तरित करके उच्च दर्जे की जेल तक लाने लिए उत्साहपूर्वक कार्य करता है। यदि वह कल्याणकर्ता उस अपराधी की सुधरने में सहायता नहीं करेगा तो वह कभी भी रिहा नहीं होगा, और उसकी रिहाई वास्तव में कल्याणकर्ता का लक्ष्य होना चाहिए। उसके प्रयास अदूरदर्शी तथा अपूर्ण हैं। अन्ततः ऐसे प्रयासों से न तो कारागार के उद्देश्य (कैदियों का सुधार) पूरे होते हैं और न ही कैदी का सच्चा भला (सदा के लिए जेल से मुक्ति)। इसी प्रकार बिना आध्यात्मिक ज्ञान दिये केवल भौतिक रूप से सहायता करना अपूर्ण है। इससे न तो भौतिक संसार का उद्देश्य (विद्रोही मानसिकता वाली आत्माओं का सुधार) पूरा होता है और न ही आत्मा का सच्चा भला (बारम्बार जन्म-मृत्यु के अपरिहार्य चक्र से मुक्ति) होता है।

हमारे कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि हम अपने मित्र मनुष्यों के कष्टों से आँखें फेर लें या असंवेदनशील हो जायें। करुणा निःसन्देह एक सद्गुण है और वैदिक शास्त्र बल देते हैं कि हम भगवान् की करुणा का माध्यम बनें और अन्यों की यथासम्भव सहायता करें।

सम्पूर्ण कल्याणकार्य

सर्वाधिक स्नेहिल पिता होने के कारण भगवान् अपनी सन्तानों को कष्ट में देखकर स्वयं कष्ट का अनुभव करते हैं, चाहे उन्होंने कोई भी अपराध किया हो। उन्हें सुधारने के लिए वे एक न्याय-व्यवस्था का निर्माण किया है। परन्तु एक तटस्थ उदासीन न्यायाधीश से कहीं अधिक वे विशेष कृपा का एक कार्यक्रम चलाते हैं जिसके तहत सच्चा प्रायश्चित करने वाले जीवों का शीघ्र सुधार होता है। भगवान् अपने प्रतिनिधि साधुओं के माध्यम से वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करते हैं। दुःखों का कारण जान लेने से बुद्धिमान् मनुष्य स्वेच्छापूर्वक स्वयं को सुधारकर भगवान् के साथ सामंजस्य में रहना सीख सकते हैं। तब भगवान् स्नेहवश उनके पश्चाताप की तीव्रता को देखते हुए उनके कर्मों की सजा को आंशिक या पूर्णतः क्षमा कर देते हैं। और अन्ततः भगवान् उन्हें अपने शाश्वत घर लौटने में उनकी सहायता करते हैं। (भगवद्गीता १०.१०-११) इसलिए वैदिक शास्त्र सभी बुद्धिमान कल्याणकर्ताओं का भगवान् की करुणा के साधन बनने और सभी का सर्वोच्च कल्याण करने हेतु आह्वाहन करते हैं।

मान लीजिए आप एक करोड़पति व्यक्ति के मित्र हैं। एक दिन आप उसके पुत्र को, जो अपने पिता से नाराज होकर चला गया था, सड़क पर नशे, बीमारी और पीड़ित अवस्था में भूखा भटकते हुए देखते हैं। यदि कोई उसे कुछ खाने के लिए देता है तो वह उसे खा लेता है और दिशाविहीन भटकना जारी रखता है। फिर कोई आकर उसे तन ढकने के कुछ कपड़े दे जाता है। वह खुशी-खुशी उन्हें पहनता है परन्तु फिर भी परित्यक्त ही रहता है। कोई उसे निःशुल्क दवाई देता है, जो उसे कुछ आराम तो देती हैं परन्त स्थाई राहत नहीं दे पातीं।

उसकी स्थिति देखकर आप उसे अपनी कार में बैठाकर अपने घर ले आते हैं और स्नान करवाकर भोजन खिलाते हैं। जब वह थोड़ा सम्भल जाता है तो आप उससे प्रेमपूर्वक बातें करना आरम्भ करते हैं और उसे बताते हैं कि उसके पिता उससे कितना अधिक प्रेम करते हैं। आप पिता-पुत्र के सम्बन्धों में आई गलतफहमी को दूर करते हैं। और जब वह सहमत हो जाता है तो आप उसे उसके पिता के महल में ले जाते हैं, जहाँ उसे सर्वोत्तम व्यंजन, भव्य वस्त्र एवं अलंकार तथा दक्ष डॉक्टरों द्वारा चिकित्सा प्राप्त होती है। पिता से पुनर्मिलन उसकी अनेक समस्याओं को सुलझा देता है। भौतिक स्तर पर कल्याणकर्ता भोजन, वस्त्र और दवाई देने वाले लोगों के समान हैं, जबकि भक्त पिता के उस मित्र के समान है जो भटके हुए पुत्र को वापस पिता के पास ले जाता है।

हम सभी उस भगवान् की संतान हैं जो लक्ष्मीदेवी के स्वामी हैं, अर्थात् हम भगवद्धाम के राजकुमारों के समान हैं। परन्तु बिना कारण से अपनी स्वतन्त्र इच्छा के दुरुपयोग ने हमें अपने प्रेमी पिता की शरण से दूर करके उस करोड़पति व्यक्ति के भटके पुत्र की भाँति तुच्छ सुखों के लिए इस भौतिक संसार में संघर्ष करने के लिए बाध्य कर दिया है।

समाज के लिए इस्कॉन की सेवा

अधिकांश लोग आध्यात्मिक ज्ञान से इतने अनभिज्ञ हैं कि वे इतना तक नहीं जानते कि वे भगवान् की सन्तान हैं और शाश्वत आनन्दमय जीवन उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। आध्यात्मिकता के अभाव से ग्रस्त संसार में अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ निम्नलिखित कार्य करता है -

- जाति, धर्म, राष्ट्रीयता, लिंगभेद, प्रजाति आदि के भेदभाव को अनदेखा कर सभी को सुव्यवस्थित आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करता है।

- एक आकर्षक जीवनशैली का विकल्प प्रस्तुत करता है जो आध्यात्मिकता के पालन हेतु अनुकूल है तथा अत्यन्त सार्थक एवं परिपूर्ण जीवन प्रदान करती है।

- भगवान् के असाम्प्रदायिक, व्यापक तथा चिरकाल से सिद्ध पवित्र नामों, विशेष रूप से हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन का, प्रसार करता है। कीर्तन लोगों को सहजता से भगवान् से जोड़ता है और उनके धाम लौटने का मार्ग प्रशस्त करता है।

- करोड़ों लोगों को उच्चतर सुख प्रदान करके उन्हें माँसाहार, व्यभिचार, नशे और जुए जैसे आत्मविनाशी कार्यों से मुक्त करता है और इस प्रकार उन्हें इस जीवन एवं भावी जीवन में मिलने वाले भयंकर कर्मफलों से बचाता है।

- फूड फॉर लाइफ चलाता है, जो विश्व का सबसे विशाल मुफ्त-भोजन-वितरण कार्यक्रम है। वितरित किया जाने वाला प्रसाद शरीर को पोषण तथा आत्मा को जागृत करता है। यह प्रसाद युद्धग्रस्त क्षेत्रों सहित विश्वभर के करोड़ों लोगों तक पहुँचता है।

इस्कॉन लोगों को स्मरण करवाकर कि वे भगवान् की संतान हैं, उन्हें भगवान् तक लौट जाने में अथक प्रयास करता है। इस प्रकार का सामंजस्य स्थापित करके वे अपने हृदय में स्थित प्रेम, शान्ति और सुख के छिपे खजाने को न केवल स्वयं प्राप्त करते हैं अपितु उसे अन्यों को वितरित भी करते हैं। हेनरी डेविड थोरो ने कहा था, ''बुराई के वृक्ष के पत्तों पर हजार प्रहार करने से अच्छा उसकी जड़ पर एक प्रहार करना है।'' अन्य अनेक संस्थाओं द्वारा किये जा रहे कल्याणकार्यों के बीच इस्कॉन द्वारा शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान तथा संस्कृति का प्रचार समस्या की जड़ पर प्रहार करता है तथा लोगों को शाश्वत सुख प्रदान करता है।

चैतन्यचरण दास इस्कॉन पूना में रहते हैं। उनकी ई.पत्रिका पढ़ने के लिए thespiritualscientist.com पर जायें।

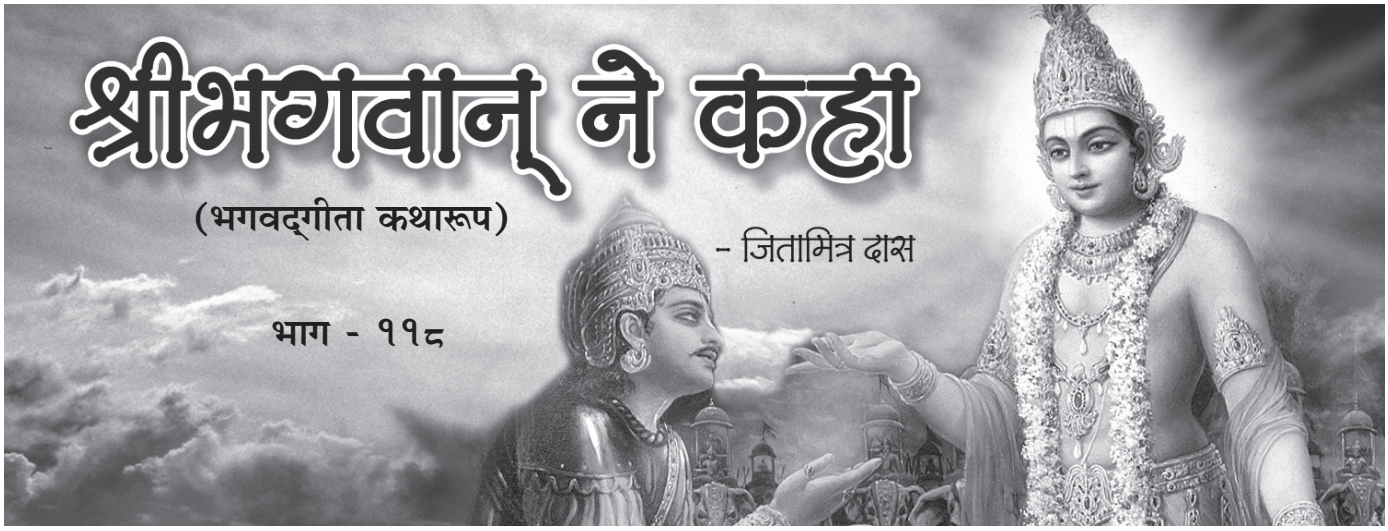

श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि श्रेष्ठता त्याग में नहीं, अपितु अपनी प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा में नियोजित करने में है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा
नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोग-
मसक्तः स विशिष्यते ।।

अर्थात् 'दूसरी ओर, जो मनुष्य मन द्वारा इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों द्वारा भक्तिभावित कर्म करता है, वह अति श्रेष्ठ है।' (भगवद्गीता ३.७)

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ

इस श्लोक में 'इन्द्रियाणि' शब्द का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों से है। तथा 'कर्मेन्द्रियैः' शब्द का अर्थ कर्मेन्द्रियों से है। हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ज्ञानेन्द्रियों का अर्थ उन इन्द्रियों से है जिनसे हम इस भौतिक जगत् के विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। तथा कर्मेन्द्रियों का अर्थ उन इन्द्रियों से है जिनसे हम विभिन्न प्रकार के कर्म करते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं- (१) श्रोत्र (२) चक्षु (३) स्पर्शन (४) रसना और (५) घ्राण। तथा इनके विषय क्रमशः हैं- (१) शब्द (२) रूप (३) स्पर्श (४) रस और (५) गन्ध। श्रीभगवान् का कहना है कि विशिष्ट व्यक्ति वह है जो मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं- (१) हस्त (२) पाद (३) वाक् (४) उपस्थ और (५) गुदा। तथा इनके कर्म क्रमशः हैं- (१) ग्रहण करना (२) चलना (३) बोलना (४) मूत्र त्याग करना और (५) मल त्याग करना।

मिथ्याचारी और सदाचारी में अन्तर

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'तु' (यः तु इन्द्रियाणि...) का अर्थ है- किन्तु। इससे पता चलता है कि भगवान् ने पूर्व श्लोक में जो बात कही है उसके अतिरिक्त दूसरी बात इस श्लोक में कह रहे हैं। पूर्व श्लोक में भगवान् ने उस मिथ्याचारी की बात कही है जो ज्ञानेन्द्रियों के विषयों (अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) का स्मरण करता है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों को मन के द्वारा वश में नहीं करता, परन्तु कर्मेन्द्रियों को वश में करता है अर्थात् कर्मों (ग्रहण करना, चलना इत्यादि) को बन्द कर देता है। इस प्रकार से भगवान् हमें दो स्थितियाँ समझा रहे हैं- (१) मिथ्याचारी वह है जो कर्मेन्द्रियों से कर्म न करे परन्तु भौतिक विषय भोग की कामना करे। तथा (२) सदाचारी वह है जो कर्मेन्द्रियों से कर्म करे, परन्तु भौतिक विषय भोग की कामना को वश में करे। कर्मेन्द्रियों से कर्म भी वह किस प्रकार से करता है? भगवान् कहते हैं- वह कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आरम्भ (आरभते) करता है। वह कर्मेन्द्रियों से मनमाना कर्म नहीं करता- कर्मयोग का आचरण करता है। कर्मयोग का अर्थ है- कर्म के द्वारा भगवान् से सम्बन्ध स्थापित करना। इसलिये श्रील प्रभुपाद इस श्लोक के अनुवाद में लिखते हैं- 'भक्तिभावित कर्म करता है।' परन्तु ध्यान रहे कि कर्मयोग में भगवान् की प्रत्यक्ष भक्ति तो नहीं होती, परन्तु फिर भी सर्वव्यापी ईश्वर की प्रसन्नता के लिये कर्म किया जाता है तथा यह भी एक प्रकार की भक्ति का रूप है। इस कर्मयोग के विषय में श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में लिखते हैं- 'सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म का उद्देश्य जीवन के इस लक्ष्य की प्राप्ति (श्रीविष्णु की प्राप्ति) में हमें सहायता प्रदान करना है।' इसका अर्थ यह हुआ कि कर्मयोगी उसे कहते हैं जो निष्काम भाव से अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुसार कर्म करता है। वर्ण तथा आश्रम के जो-जो कर्तव्य शास्त्र में दिये गये हैं अपने विशेष वर्ण तथा आश्रम में रहकर उसी प्रकार के कार्य करते हुये व्यक्ति भगवान् को प्रसन्न कर सकता है।

मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को वश में करना

इस श्लोक में ज्ञानेन्द्रियों को मन के द्वारा वश

में करने की बात कही गयी है तथा पूर्व श्लोक में इसके विपरीत ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का मन के द्वारा स्मरण करने की बात कही गयी है। अतः मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने का अर्थ हुआ – मन में ज्ञानेन्द्रियों के विषयों की कामना न करना। तीसरे अध्याय के ३४वें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि इन्द्रियों में जो विषयों के प्रति राग-द्वेष रहता है उनके वश में नहीं होना चाहिये। राग और द्वेष, ये दोनों इन्द्रियों में सदा ही रहते हैं। जैसे श्रवण इन्द्रिय का विषय है- शब्द। तो श्रवण इन्द्रिय में किसी मधुर स्वर (शब्द) के प्रति राग होता है तथा किसी कठोर स्वर (शब्द) के प्रति द्वेष रहता है। सामान्य व्यक्ति इन्हीं राग-द्वेष के वशीभूत होकर मन के द्वारा किसी विषय को स्वीकार (संकल्प) करता है तथा किसी विषय का तिरस्कार (विकल्प) करता है। इस प्रकार उसका मन इन्द्रियों के वशीभूत रहता है। परन्तु यहाँ पर भगवान् कह रहे हैं कि हमारा मन इन्द्रियों के राग-द्वेष के वश में न होकर इन्द्रियों पर नियन्त्रण करे, तथा कर्मेन्द्रियों को कर्मयोग में नियुक्त करे।

कर्मेन्द्रियों को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना

श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में लिखते हैं- 'कृष्णभावनाभावित नियमित सेवा करने से गृहस्थ भी इस गति को प्राप्त हो सकता है।' इसका अर्थ हुआ कि कर्मेन्द्रियों के द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिये कर्म करके एक गृहस्थ व्यक्ति भी योगी बन सकता है। जैसाकि पूर्व में बतलाया जा चुका है कि हमारे शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। उनमें से उपस्थ और गुदा तो अशुद्ध हैं क्योंकि इनका कार्य मूत्र तथा मल त्याग करना है। अतः इनको तो भगवान् की सेवा में नहीं लगाया जा सकता, परन्तु शेष तीन कर्मेन्द्रियाँ हस्त, पाद तथा वाक् को कृष्ण की अनेक प्रकार की सेवाओं में लगाया जा सकता है।

हस्त को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना – हस्त को भगवान् के मन्दिर की सफाई में लगाया जा सकता है। श्रीमद्भागवत में अम्बरीष महाराज के विषय में लिखा है कि- *'करौ हरेर्मन्दिरमार्ज्जनादिषु'* अर्थात् वे अपने दोनों हाथों से भगवान् के मन्दिर को साफ करते थे। *आदिषु* शब्द से सूचित होता है कि इस प्रकार के अन्य अनेक कार्य भगवान् की सेवा में होते हैं, जैसे- हाथों से भगवान् की आरती करना, हाथों से भगवान् को स्नान कराना, हाथों से भगवान् को वस्त्र पहनाना, हाथों से भगवान् को पुष्प अर्पण करना, हाथों से भगवान् को भोग लगाना, हाथों से भगवान् को हार, आभूषण पहनाना, भगवान् के कीर्तन के समय हाथों से ताली या करताल बजाना, हाथों से भगवान् के भक्तों का स्पर्श करना, हाथों से भगवान् के लिये भोग पकाना आदि।

पाद को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना – उसी प्रकार पैरों को भी कृष्ण की सेवा में लगाया जा सकता है। अम्बरीष महाराज के विषय में लिखा है- *'पादौ हरेः क्षेत्रपथानुसर्पणे'* – अर्थात् उन्होंने अपने चरणों को भगवान् के स्थान की ओर जाने वाले रास्तों में पैदल चलने में लगाया। बहुत से तीर्थयात्री पैदल चलते हुये काफी दूर से भगवान् के धामों की यात्रा करते हैं। भक्तिरसामृतसिंधु नामक ग्रन्थ के अनुसार पालकी में बैठकर मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिये जाना अपराध है। चरणों को भगवान् की सेवा में लगाने के लिये चरण-पादुका का भी त्याग करना चाहिये। इसीलिये मन्दिरों में जाने वाले दर्शनार्थी पादुकायें सदा मन्दिर के बाहर उतारते हैं। चरणों को भगवान् की सेवा में लगाने के लिये यथासम्भव मन्दिर की परिक्रमा भी करनी चाहिये। बहुत से भक्तगण कार्तिक मास में ८४ कोश की व्रजमण्डल परिक्रमा करते हैं। यह भी भगवान् की सेवा में चरणों को लगाने का एक उपाय है। भगवान् के कार्य से जहाँ भी जाना पड़े, वह भी चरणों के द्वारा भगवान् की सेवा है।

माधवेन्द्र पुरी को जब गोपाल जी ने आदेश दिया 'माधवेन्द्र पुरी! अनेक सैकड़ों वर्षों तक मैं पृथ्वी के अन्दर दबा रहा, इसलिये मेरे शरीर की गर्मी नहीं दूर हुई। अतः मेरे शरीर पर चन्दन का लेप करने के लिये तुम्हें मलय-चन्दन लाना होगा।' भगवान् के आदेश से माधवेन्द्र पुरी पैदल चलकर वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी गये।

वाणी को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना – इसी प्रकार वाक् इन्द्रिय अर्थात् वाणी को भी भगवान् की सेवा में लगाया जा सकता है। अम्बरीष महाराज के विषय में कहा गया है- *'वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने'* अर्थात् उन्होंने अपनी वाणी को भगवान् का गुणगान करने में लगाया। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को निरन्तर सात दिनों तक श्रीमद्भागवत का श्रवण कराया। यह वाणी के द्वारा भगवान् की सेवा है। शुद्ध भक्तों द्वारा रचित भजनों का गान करना भी वाणी द्वारा भगवान् की सेवा है। किन्तु उपर्युक्त विधियों के लिए तो कुछ योग्यता की आवश्यकता भी है, परन्तु वाणी के द्वारा भगवान् की सेवा करने की सबसे सरल विधि भगवान् के नामों का कीर्तन है। श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है-

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

अर्थात् 'कलियुग में हरिनाम, हरिनाम तथा केवल हरिनाम ही मनुष्यों की गति है, अन्यथा कोई भी गति नहीं है, कोई भी गति नहीं है, कोई भी गति नहीं है।' वाणी के द्वारा यह

यह भगवान् की हम पर महान कृपा है कि उन्होंने अपने नामोच्चारण के द्वारा हमें सेवा करने का अधिकार दिया है।

सेवा हम सदा कर सकते हैं। यह भगवान् की हम पर महान कृपा है कि उन्होंने अपने नामोच्चारण के द्वारा हमें सेवा करने का अधिकार दिया है। हम प्रचार के समय जब लोगों से अनुरोध करते हैं 'कृपया प्रतिदिन भगवान् का नाम नियमित रूप से लिया कीजिये।' तो कुछ लोग कहते हैं- 'जब हमारे ऊपर भगवान् की कृपा होगी तब हम भगवान् का नाम लिया करेंगे।' परन्तु यह बात उचित नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने शिक्षाष्टकम् के दूसरे श्लोक में कहते हैं कि 'हे भगवन्! आपने अपने अनेक नाम प्रकट किये हैं तथा उन नामों में आपने अपनी समस्त शक्तियाँ अर्पित कर दी हैं। इन नामों का कीर्तन करने में स्थान का तथा समय का कोई भी नियम नहीं है। प्रभो! आपकी तो मुझ पर इतनी कृपा है, परन्तु यह मेरा ही दुर्भाग्य है कि इन नामों का कीर्तन करने में मेरा अनुराग नहीं है।' इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर भगवान् की महान कृपा है, चाहे वह बालक हो, चाहे वृद्ध हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, चाहे उच्च कुल का हो, चाहे नीच कुल का हो, चाहे धनवान् हो, चाहे निर्धन हो। जिसने मनुष्य रूप में जन्म लिया है वह भगवान् का नाम ले सकता है। इसके लिये किसी भी समय या स्थान का बन्धन नहीं है। अन्य अनुष्ठानों में सदा विचार किया जाता है कि कौन-सा स्थान शुभ है या अशुभ है अथवा कौन-सा दिन अथवा प्रहर या मुहूर्त शुभ है या अशुभ है। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुसार भगवान् के नामों का कीर्तन करने में अपवित्र या पवित्र स्थान अथवा शुभ या अशुभ समय का कोई भी विचार नहीं करना चाहिये। भगवान् की इतनी कृपा होने के बावजूद भी (अर्थात् सभी को भगवान् के नाम सभी समय तथा सभी जगह लेने का अधिकार है) जो लोग भगवान् का नाम नहीं लेते, वे दुर्भाग्यशाली हैं। अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा के अनुसार यदि हम भगवान् का नाम नहीं लेते तो उसे हमें अपना दुर्भाग्य समझना चाहिये। भक्त का यही कार्य है कि सदा भगवान् की कृपा देखना तथा अपनी निर्बलता देखना।

भक्ति का प्रारम्भ जिह्वा से – श्रील प्रभुपाद कहा करते थे कि भक्ति का प्रारम्भ हमारी जिह्वा से होता है। जिह्वा के दो कार्य हैं (१) कर्मेन्द्रिय के रूप में बोलना (२) ज्ञानेन्द्रिय के रूप में स्वाद लेना। इस प्रकार जिह्वा को भगवान् की सेवा में दो प्रकार से लगाया जा सकता है- (१) भगवान् के नामों का कीर्तन करने में तथा (२) भगवान् का प्रसाद खाने में। भगवान् का नाम तथा भगवान् का प्रसाद प्रत्येक व्यक्ति आसानी से ग्रहण कर सकता है। उसमें भी भगवान् का नाम ही हर समय तथा हर जगह तथा हर व्यक्ति को सुलभ है।

वह व्यक्ति मिथ्याचारी से अति श्रेष्ठ है – श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में लिखते हैं- 'अतएव जो निष्कपट भाव से इस विधि का अनुगमन करता है वह उस मिथ्याचारी से अति श्रेष्ठ है जो अबोध जनता को ठगने के उद्देश्य से कृत्रिम आध्यात्मिकता धारण किये रहता है।' पूर्व श्लोक में जिस मिथ्याचारी की बात कही गयी है, ऐसे अनेक कपटी लोग इस कलियुग में साधु का वेश धारण किये हुये घूमते रहते हैं। वे न तो कर्मेन्द्रियों अर्थात् हाथ, पैर और वाणी द्वारा भगवान् की कोई सेवा करते हैं, न ही भगवान् का उपदेश देते हैं और न ही भगवान् के नामों का कीर्तन ही करते हैं, परन्तु मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते रहते हैं। वे किस प्रकार का चिन्तन करते हैं?- दूसरों के घरों को देखकर इच्छा करते हैं- 'काश! मुझे ऐसा मकान मिला होता!' 'दूसरों के धन को देखकर इच्छा करते हैं'- 'काश! मुझे इतना धन मिल जाये!' अन्यों के भोग की वस्तुयें देखकर सोचते हैं- 'काश! ये सभी वस्तुयें मुझे मिल जायें!' इस प्रकार से वे वाणी रूपी कर्मेन्द्रिय को रोककर मन के द्वारा विषयों की इच्छा करते हैं। श्रील प्रभुपाद के शब्दों में- 'जीविका के लिये ध्यान लगाने वाले प्रवंचक ध्यानी से तो निश्छल झाड़ू लगाने वाला भी अच्छा है।' जो व्यक्ति ध्यान के नाम पर अपनी वाणी द्वारा भगवान् का न तो कीर्तन ही करता है, और न ही सामान्य जनता को उपदेश ही करता है वह मिथ्याचारी केवल जीवन निर्वाह के लिये ध्यान का ढोंग करता है। इससे अच्छा एक नीच कुल में जन्म लेने वाला शूद्र भी है जो निष्कपट भाव से काम करते हुये भी भगवान् का नाम लेता है।

हरे कृष्ण महामन्त्र सर्वश्रेष्ठ है – यद्यपि भगवान् के अनेक नाम हैं तथा उनमें भगवान् की सम्पूर्ण शक्ति निहित है, परन्तु फिर भी सुविधा की दृष्टि से सोलह नामों का महामन्त्र 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।' सर्वश्रेष्ठ है जिसका कीर्तन हर समय आसानी से किया जा सकता है।

इस श्लोक के बंगाली पद्यानुवाद में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं-

किन्तु यदि निजेन्द्रिय संयत नियमे।
कर्मेर आरम्भ करे यथा यथा क्रमे।।
वातुल न हय मर्कट वैराग्य करि।
अन्तर्निष्ठा हले हय सहाय श्रीहरि।।
सेई हय कर्मयोग कर्मेन्द्रिय द्वारा।
आसक्तिरहित कर्म विशेष प्रकारा।।

यहाँ पर श्रील प्रभुपाद मर्कट वैराग्य की बात कर रहे हैं। मर्कट का अर्थ है- बन्दर। बन्दर देखने में तो अत्यन्त विरक्त होता है। वह जंगल में रहता है, उसका कोई घर नहीं होता तथा वह अपने शरीर पर वस्त्र भी धारण नहीं करता है, परन्तु उसकी स्थिति कैसी है? वह सदा इन्द्रियतृप्ति के लिये चंचल रहता है। तो यहाँ पर श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि जो सदाचारी है वह कर्मेन्द्रियों को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाता है तथा अपने मन में इन्द्रियतृप्ति का चिन्तन न करके सदा श्रीकृष्ण का चिन्तन करता है। इस प्रकार उसका वैराग्य मर्कट वैराग्य न होकर युक्त वैराग्य कहलाता है जिसमें वह प्रत्येक वस्तु को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाता है।

हरे कृष्ण!

(पत्रिका में सीमित स्थान होने के कारण यहाँ लेख का संक्षिप्तीकरण प्रकाशित किया गया है।)

Touching ISKCON Temple
Pune (Kondhwa)

Barsānā

... be the blessed Neighbour of GOD!

PHASE - I

An Exclusive Township of
1, 2 & 3 BHK Homes

With all Premium Amenities & Specifications like Vrindavan forest, Swimming pool,
Kids play zone, Community hall, Invertor for each flat, Genset backup, etc...

Sample Flat Ready

CONTACT :
Suvarna Gauranga Das - 9096082678
e-mail : info@barsanagroup.com

A Project by:
Vrindavan Realtors

कैंसर

इस अंक में दो लेख कैंसर पीड़ित दो व्यक्तियों का वर्णन करते हैं,जिनके रोग ने जीवन की उच्च सच्चाई को देखने में उनकी सहायता की। एक ओर युगावतार दास की दादी वृद्धावस्था में इस रोग का पता चलते ही गम्भीरता से कृष्णभक्ति को अंगीकार करती हैं, तो दूसरी ओर प.पू.इन्द्रद्युम्न स्वामी पोलैण्ड उत्सव में ऐसे युवक से मिलते हैं जिसकी छोटी बहन कैंसर से पीड़ित अवस्था में हरे कृष्ण महामंत्र से विशेष आसक्ति जागृत कर लेती है।

हालाँकि आजकल कैंसर सामान्य हो चला है, इसका नाममात्र भय उत्पन्न करता है।

कैसे शुरुआत होती है इसकी शरीर में? मोटे तौर पर शरीर के कुछ सैल अर्थात् कोशिकाओं की प्रकृति विपरीत हो जाती है, शरीर का पोषण करने के स्थान पर वे उसका शोषण करने लगते हैं। मित्र शत्रु बन जाते हैं, और तेजी से फैलने लगती है शरीर में उनकी आबादी।

ऐसा क्यों होता है? कुछ निश्चित् नहीं कह सकते।

समाधान? या तो दूषित अंग को अलग कर दिया जाये, या कीमोथैरेपी जैसी विधियों द्वारा शरीर के समस्त सैलों पर आक्रमण कर दिया जाये – किन्तु उसमें शत्रुओं के साथ-साथ मित्र भी मर जाते हैं। अथवा अंतिम यात्रा की तैयारी।

कैंसर रोग केवल देह का है, एक कैंसर हमारी आत्मा पर भी लगा है। भौतिक जगत् के सभी जीव अर्थात् हम सभी कैंसर से विकृत हुई कोशिकाओं के समान हैं। आध्यात्मिक जगत् में हमारा कार्य भगवान् की सेवा करना था किन्तु अचानक हमारी प्रकृति विपरीत हो गई – हमारे अन्दर स्वयं भगवान् बनने की इच्छा ने जन्म लिया।

इसका कारण क्या था? भगवद्गीता (७.२७) स्पष्ट बताती है – भगवान् से द्वेष और उनसे अलग रहकर भोग करने की इच्छा।

चूँकि आध्यात्मिक जगत् में जीव की इन विकृत इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती, भगवान् को उन्हें अपने धाम से अलग करने के लिए बाध्य होना पड़ा, और उन्होंने इस भौतिक जगत् का निर्माण किया। हम स्वयं को कितना भी महान्, संभ्रान्त अथवा सफल माने, सच्चाई यह है कि हम सभी विद्रोही हैं।

समाधान? उसे दूर करने के लिए हमें उस दूषित मानसिकता को काटकर फेंकना होगा कि मैं भोक्ता हूँ, मैं स्वामी हूँ, मैं नियंत्रक हूँ। उसके लिए थैरेपी है हरे कृष्ण महामंत्र – हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे का नियमित सेवन अर्थात् जप। और यह केवल आपके दुर्गुण रूपी शत्रुओं को ही मारती है तथा सद्गुण रूपी मित्रों को बढ़ाती है।

चाहे कैंसर हो या सड़क दुर्घटना अथवा गुण्डों द्वारा हमला, मृत्यु अटल है। यह केवल भ्रम है कि अमुक व्यक्ति कैंसर से मरा और हम ''शान्ति'' से मरेंगे। मेरी, आपकी और यहाँ तककि कैंसर सर्जन की भी एक दिन मृत्यु होगी; यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कैसे। भगवद्गीता के अनुसार जिसका जन्म हुआ है मृत्यु निश्चित् है और मृत्यु के पश्चात् जन्म निश्चित् है। कोई भी भौतिक थैरेपी जन्म-मृत्यु से मुक्त नहीं कर सकती।

शरीर के कैंसर को दूर करने के लिए अनेकानेक शोध किये जा रहे हैं, किन्तु आत्मा के कैंसर के लिए नहीं। ऐसे जीवन को कैंसर के चंगुल से छुड़ाने के लिए हम लाखों रुपये एवं शक्ति खर्च करते हैं, जो वैसे भी निरर्थक जाने वाला है। किन्तु हम आत्मा के कैंसर को दूर करने का प्रयास नहीं करते, जो हमें सदा-सदा के लिए इस दुखभरे संसार से मुक्त कर सकता है।

यदि हम अपने जीवन के उद्देश्य – जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बिमारियों से मुक्त होकर भगवद्धाम लौटना – से अनभिज्ञ रहना चाहते हैं तो स्वस्थ होते हुए भी हम सर्वाधिक भयंकर कैंसर से पीड़ित हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं, ''तुम्हें इस संसार की कष्टों से मुक्त करने के लिए मैं हरिनाम रूपी औषधी लाया हूँ। इसे स्वीकार करो।''

एक बार कैंसर का इलाज हो जाने पर भी उसके पुनः प्रकट होने की सम्भावनायें बनी रहती हैं, किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु दिये गये हरिनाम द्वारा आत्मा से कैंसर नष्ट हो जाने पर वह पुनः प्रकट नहीं हो सकता। भगवद्गीता (८.१६) में भगवान् स्वयं इसकी गारंटी लेते हैं।

एक बात और। जहाँ सरकार कैंसर जैसी घातक बिमारियों पर रोक लगाने के लिए अपनी तिजोरी से करोड़ों रुपये खर्च कर रही है, वहीं दूसरी ओर उस तिजोरी को भरने के लिए उन कार्यों की अनुमति दे रही है जो इन बिमारियों को तेजी से फैलाते हैं – रासायनिक उद्योग, करोड़ों टन विषैला धुँआ उगलते वाहन, नदियों को प्रदूषित करते कारखाने, फास्टफूड, इत्यादि।

मानो सरकार की प्रकृति भी कैंसर की कोशिकाओं के समान विपरीत हो चुकी है, पोषण के स्थान पर नागरिकों का शोषण। दुर्भाग्य तो यह है कि फिर भी हमें अपने प्रेमी एवं सुहृद मित्र भगवान् पर भरोसा उत्पन्न नहीं हुआ है।

जितनी सावधानी से हम अपने शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए औषधियाँ लेते हैं, काश उतनी ही गम्भीरता से हरिनाम रूपी औषधी भी लें तो इसी जीवन में हम अपनी मूल स्थिति पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

यही 'भगवद्दर्शन' का उद्देश्य है।

– वंशी विहारी दास